श्रद्धेय नागराजजी के साथ संवाद* पर आधारित

२०१९ अमरकंटक सम्मेलन के अवसर पर प्रकाशन

* यह 'संवाद-Z' के नाम से संकलन पर आधारित सारांश प्रस्तुति है

:: अध्ययन और अभ्यास ::

पहले आता है **शास्त्राभ्यास या श्रवण** | शास्त्राभ्यास का मतलब है लिखे हुए को समझना | ४ दर्शन, ३ वाद, ३ शास्त्र और संविधान में लिखा है – पूरा thesis (वांग्मय) | सुनना ही पढना है –यह लिखा है | पढ़े हुए शब्द का अर्थ कल्पना रूप में स्वीकार होना ही श्रवण है। इसी से सच्चाई का, न्याय-धर्म-सत्य का भास् होता है | पुस्तकों का विधिवत पठन क्रम हमारी कल्पनाशीलता के लिये मार्गदर्शिका बन जाता है। स्वयं प्रमाणित करने के लिये पढ़ते है, जीवन में सुनते है तो ही पढ़ना होता है, नहीं तो नहीं होता है। कान मात्र में सुनने से सुनना नहीं हुआ | दूसरों को बताने के लिए पढ़ते हैं, तो श्रवण नहीं हुआ | सूचनाओं के आधार हमारा कल्पनाशीलता को दिशा मिलता है, उसे हम नियोजित करते हैं । तर्क के साथ ही शास्त्राभ्यास पूरा होता है | न्याय, धर्म, सत्य स्वीकार होने तक तर्क रहता है। उस आधार पर चित्रण भी तर्कसंगत होता है, यही आभास होना है । कब तक पढ़ना है, पुछा ? जब तक अर्थ समझ में नही आएगा, अर्थ के रूप में अस्तित्व में वस्तु नहीं समझ में आएगा तब तक पढ़ना है। बोध होने तक पढना है |

इस विधी से, जो लिखा है उसे वैसा ही समझना, हमारे पूर्वाग्रहों, पूर्व स्मृतियों को मिलाए बिना, पूर्वाभ्यासों को मिलाए बिना समझना । केवल बारंबार पुस्तक पढ़ना शास्त्राभ्यास नहीं है, तो जो पढ़ा हुआ है, सुना हुआ है, उसके भाषा सहित अर्थ कल्पना में आना, चित्रित होना, एक अर्थ में अनेक भाषा को एकत्रित करना होता है | इस तरह भाषा के अर्थ को समझना श्रवण है, यह परिभाषा विधि से ही सार्थक होता है | परिभाषाओं को छोड़कर के हम कहीं नहीं पहुंचेंगे । इसमें अगर हम भाषा परिवर्तित करते है, हम भटक जाते है, वो मनमानी हो गया, उससे कोई यथार्थ हाथ लगने वाला नहीं है | किसी को नहीं होगा | इसीलिए हमने लिखा है, भाषा परम्परा की है, परिभाषा, हमारा है | | परिभाषा के बिना अध्ययन होता नहीं| मन लगाकर परिभाषा के साथ जुडना है, परिभाषा को पचाना हैं| भाषा में कुछ भी पचता हैं, वस्तु के रूप में, वह परिभाषा विधि ही हैं| दूसरा कोई रास्ता भी नहीं हैं| | परिभाषा अपने स्वरूप में भाषा से इंगित अर्थ को निर्देशित करने की प्रक्रिया है । अभी पुस्तक को पढ़ लिया, अपने आप को विद्वान मान लेता है आदमी | अभी आदमी अपने मन अनुसार सुनता है, अपने अनुकूलता के लिए सुनता है, बाकी को reject (नकार) कर देता है, अथवा amendments करता है (बदल देना) | इसीलिए परिभाषा संहिता लिख कर दे चुके हैं |

श्रवण के बाद आता है, **मनन** | मनन अपने में न्याय-धर्म-सत्य का तुलन प्रक्रिया है | स्वयं प्रमाणित होने के लक्ष्य से तुलन करते हैं, तो वो प्रतीति में जाता है | अन्यथा तुलन ही नहीं होता है – हम श्रवण तक ही रह जाते हैं, जिसमे भाषा भर दोहराना बन सकता है | इस विधि से अर्थ को स्वीकारना मनन है | पुनह: मनन में क्या हुआ ? श्रवण से जो भाषा सहित अर्थ हमारे कल्पना में है, सूत्र रूप में, उसे स्वयं प्राप्त करने की इच्छा होता है, उसमे स्वयं प्रवृत्त होना | साक्षात्कार जिस बात का होना है, उसका पहले वृत्ति में विचार एवं तुलन

होता है। जो सूचना मिलती है, उसमें न्याय-धर्म-सत्य और प्रिय-हित-लाभ में भेद स्पष्ट हो जाता है, स्वीकार हो जाता है। इन दोनों के बीच तुलन होने पर निश्चयन होता है- यही "न्याय धर्म सत्य है"। यह होने से न्याय धर्म सत्य का पलड़ा भारी हो जाता है | न्याय धर्म सत्य तुलन वरीयता के बाद कोई तर्क नही है। तर्क का मतलब ऐसा भी हो सकता है, वैसा भी हो सकता है, इस आधार पर हम कभी निश्चय में आते ही नही। दुसरे विधि से, श्रवण या शास्त्राभ्यास से जो हम भाषा रूप में समझे हैं, उसे केंद्रीकृत करना मनन प्रक्रिया है | केंद्रीकृत होने से हम साक्षात्कार में चले गए | अभी इस प्रक्रिया में हम जाते नहीं, इसीलिए समय लगता है, चित्त वृत्तियाँ बिखरे रहते हैं, इसीलिए वो concentrate (एकत्रित) नहीं होता | फलत: साक्षात्कार कि आवश्यकता ही नहीं बनती – जीवन में |

ऐसा मननपूर्वक निश्चयन होने के आधार पर ही साक्षात्कार होता है। तुलन में यह निश्चयन हुए बिना साक्षात्कार होता ही नही। वह प्रक्रिया ही शुरू नही होती। साक्षात्कार तक पहुँचने में ही सारा समय लगता है, तुलन में प्राथमिकता को तय करने में ही हम पीछे रह जाते है। रूप और गुण के बारें में तुलन प्रिय-हित-लाभ के अर्थ में ही होता है, इसके साथ 'स्वभाव' और 'धर्म', भाषा रूप में ही रहता है । स्वभाव और धर्म के बारे में तुलन न्याय-धर्म-सत्य के अर्थ में ही होता है। दूसरा कोई तरीका ही नही है। इसी जगह हमें ज्यादा ध्यान देने की जरूरत है – हमारा 'समझ' भाषा रूप में है, या अर्थ रूप में ? हम श्रवण के बाद मनन नही करते, तो निश्चयन होता नही, इसलिये साक्षात्कार होता नही है। इस विधि से साक्षात्कार के लिए निरंतर प्रयास करने कि, ध्यान देने की आवश्यकता है – यही **अभ्यास है, साक्षात्कार के लिए, इसका नाम दिया चिन्तनाभ्यास** |

रास्ते तक चल कर ही हम गम्य स्थली तक पहुँचते हैं – इसीलिए, इसके अनुसार जीना भी आवश्यक है | जीने में प्रधान आता है, व्यवहार का अभ्यास | **व्यवहाराभ्यास** का तात्पर्य है जागृत आचरण को, मानवीय आचरण को हम स्वीकारते हैं, आत्मसात करके उसे स्वयं जीते हैं | यह जागृत मानव के अनुकरण विधि से होता है | पहले तय कर लो – किसका अनुकरण करोगे? जागृत, प्रमाणित व्यक्ति का, या किसी और का ? उसी जागृति आचरण को शास्त्रों में लिखा है, मनोविज्ञान में दिया है, पूरा का पूरा |

स्वयं के निरीक्षण पूर्वक ही व्यवहाराभ्यास पूरा होता है | हम जो व्यवहार किये हैं, वो कहाँ तक न्याय है ? कहाँ तक धर्म है ? कहाँ तक सत्य है ? या निश्चयन होता है | व्यवहाराभ्यास का मतलब संबंधों में समाधान को पा लेना। सार्वभौम आचरण को हम स्वीकार लेते है, यही व्यवहार का अभ्यास है। इसमें हमारी व्यक्तिवादिता विलीन हो जाती है। व्यक्तिवादिता का मतलब हैहम' : विद्वान हो गए, बाकी सब बेवकूफ | 'बौद्धिक, सामाजिक, प्राकृतिक नियमों को स्वीकारते हुए, मानवीय स्वभाव के अनुकरण में संबंधों में जीने का अभ्यास मतलब व्यवहाराभ्यास। दायित्व- कर्तव्य के साथ ही संबंध है, नही तो कोई संबंध नही है | मानव धर्म एक, मानव जाति एक स्वीकारने से, जीवनमूलक होने से, प्रयोजन के अर्थ में होने से व्यवहार अभ्यास होता है। साथ में होता है कर्माभ्यास- कर्माभ्यास में हमारे परिवार की सभी भौतिक आवश्यकताओं को श्रम विनिमय पूर्वक प्राप्त करना आता है | दीनता से, हीनता से, सुविधा संग्रह या व्यापार के लिए कोई कर्माभ्यास होता नहीं ।

हम अभी तक मानवीयतापूर्ण विधि से जिए नही है, यह स्वीकारे बिना अध्ययन होता ही नही। गलती को स्वीकारे बिना सही क्यों आएगा ? पहले पढ़ने से श्रवण। पढ़ना-सोचना, उससे श्रवण होना। श्रवण के बाद मनन.... मनन से हमारा आशा विचार इच्छा सच्चाई में, न्याय धर्म सत्य में स्थिर हो जाता है | वही केंद्रीकृत होने से साक्षात्कार नाम दिया | यही तदाकार है साक्षात्कार होता है तो

अध्ययन हुआ, नहीं तो अध्ययन नहीं हुआ। इसलिये साक्षात्कार के पहले श्रवण-मनन होना आवश्यक है। श्रवण मनन और निदिध्यासन की संयुक्त प्रक्रिया ही अध्ययन है – यह लिखा है । दुसरे विधि से, शब्द के अर्थ के रूप में अस्तित्व में वस्तु के साथ तदाकार होना | तीसरे विधि से विशेलेषित स्वीकृत होना ही अध्ययन है | चौथे विधि से – अधिष्ठान के साक्षी में स्मरण पूर्वक बुद्धि में हुई स्वीकृतियां ही अध्ययन है |

इसी क्रम में मन और वृत्ति के निर्विरोधिता में अपराधहीन व्यवहार, वृत्ति और चित्त के निर्विरोधिता में अन्यायहीन विचार और चित्त और बुद्धि के निर्विरोधिता में आसक्ति रहित इच्छा की जगह बनता है | इसके लिए क्रम से व्यवस्था का प्रभाव, सामाजिक आचरण और अध्ययन एवं संस्कार आवश्यक है, यह लिखा है | इसीलिए अध्ययन के लिए जोर दिया है | अध्ययन के साथ जीने के अभ्यास का महत्व भी इसी से समझ सकते हैं |

अभी का जीना, जो शरीर के आधार पर है, इसको हम वरीय मान लेते है, इसलिये हमको समय लगता है। हमारे पूर्वाभ्यास और पूर्व स्मृतियाँ अडचन बनता है। अमानवीयता में जीना अभी की परंपरा है । उसी में अपन इसको जोड़ लेने से, तर्जुमा कर लेने से भी साक्षात्कार नहीं होता है | शुद्ध वस्तु का ही साक्षात्कार होना है | साक्षात्कार के लिए शोध, अथवा अध्ययन अनिवार्य है | साक्षात्कार के लिए वस्तु क्या ? स्वभाव-धर्म | इसका सार बात, ५ सूत्र आता है: सहअस्तित्व, विकासक्रम, जीवन, जीवन जाग्रति, भौतिक रासायनिक रचना विरचना | स्वभाव धर्म का साक्षात्कार होता है, बोध है | धर्म-सत्य का अनुभव होता है | अपने को साक्षात्कार के लिए निरंतर प्रयास करने की आवश्यकता है – वही अभ्यास है | श्रवण में लिखा गया, कहा गया को समझ लेते हैं | मनन में आता है, तो तौलना बनता है – साक्षात्कार के लिए |

साक्षात्कार के बाद आता है बोध | बोध होने से हमारा अवधारणा हो गया, इसकी निरंतरता के लिए अनुभव होता है | यह कैसे हुआ पुछा ? बुद्धि और आत्मा में निर्विरोधिता के लिए ध्यान आवश्यक है | अध्ययन विधि कि उपलब्धि यही है | बुद्धि में बोध हो गया, तो आत्मा में अनुभव होना भावी है | अनुभव होने से ही समाधान कि निरंतरता हुई | अभी क्या है, अपन चित्रण को ही अवधारणा मान लेते हैं | इसीलिए रुक जाते हैं | दुसरे ओर, दूसरों को समझाना वरीयता में चले जाते हैं, तो भी रुक जाते हैं – इस विधि से तुलन ही नहीं होता है, इसीलिए साक्षात्कार में हम पीछे रह जाते हैं | पढना भाषा के साथ ही होता | भाषा खत्म होने के बाद ही अर्थ है | अर्थ जो है, अनुभव में आता है, जीने में आता है | यही आज के दिन के लिए hammering (ठोस) पॉइंट है |

जिज्ञासा: तदाकार विधि का अध्ययन करा दीजिये आप |

उत्तर: अध्ययन का मतलब इतना ही है |तदाकार तक पहुँचाना ही अध्ययन का मूल चेष्टा है | 'अध्ययन' शब्द का जो अर्थ यही है, और कुछ भी नहीं | अनुभव की रोशिनी में स्मरण पूर्वक प्रयत्न करने का मतलब इतना ही है | जो स्मरण में आता है वो तदाकार होने की स्थिति में पहुंचा देता है | क्या चीज़? - वस्तु, उसका प्रयोजन, हमारा वस्तु के साथ सम्बन्ध | यह तीनो बात हर वस्तु के साथ बोध होना | इसमें कोई भी कड़ी यदी छुटा तो आपने केवल शब्द सुना है | भक्ति में ही तद्रूप तदाकार की बात कही है और कहीं नहीं | जो 'नारद

भक्ति सूत्र' है उसमे ही तद्रूप तदाकार की बात कही है - ईष्ट देवता के बारे में | हम कह रहे हैं, हमारा ईष्ट जाग्रति लक्ष्य के आधार पर, लक्ष्य के साथ हम तद्रूप तदाकार होने वाली बात कह रहे है | इस तरह से सारा भक्ति हर मनुष्य के पास पहुँचाने की बात हो गयी | ज्ञान के बिना भक्ति होता नहीं | पहले वस्तु को पहचानना ज्ञान है, उसमे तदाकार होना भक्ति है | हमारा चाहत है वो | इस आधार पर हर मानव जाग्रति का भक्त हुआ |

जिज्ञासा: अभी मैं तदाकार नहीं हो पा रहा हूँ | उसके कारण को खोजना पड़ेगा |

उत्तर: यदि अपनी कल्पनाशीलता को हम अमानवीय प्रवृति, जीव चेतना विधि में हम प्रयोग करते है, उससे छूट नहीं पाते है | सुविधा संग्रह बलवती हो जाती है समाधान समृधि नीचे हो गया | यदि समाधान समृद्धि उपर आता है सुविधा संग्रह नीचे चला जाता है | एक दिन यदि समाधान समृधि में हम mastery (गुरुत्व) प्राप्त कर लिया सुविधा संग्रह इसमें घुल जाता है | समस्याएँ समाधान में विलय होते है | समस्याओं का अवशेष नहीं रहता | sublimation theory (उद्धवरापातक सिद्धांत, घुल जाना) है यह | सारा अज्ञान ज्ञान में sublimate (घुल) हो जाता है | बहुत ही सुगम theory (सिद्धांत) है यह | ज्ञान क्या है, उसको स्वीकारने का अधिकार हर व्यक्ति के पास है |अभी 'ज्ञान' को मानकर जो पकडे हैं, उसी को ज्ञान मान लिए तो आगे बढ़ेंगे नहीं | जैसा अभी जीव चेतना में आदमी जीता है, उसी को पकडे रहे, जीव चेतना को हम पकडे रहे और "ज्ञान" हो जाये ऐसा होता नहीं | मानव चेतना में जीव चेतना विलय होता है | मानव चेतना, देव चेतना, दिव्य चेतना में क्या विशेषता रहती है - इसमें तीनों चेतना का मानव जीव 'चेतना वाला' को साक्षात्कार करा सकता है | क्यों होता है ऐसा – दृष्टा पद (अनुभव) में तीनो अधिकार मानव, देव, दिव्य का रहता है प्रगटन में मानव चेतना से शुरू करते है देव चेतना में जाते है, देव चेतना से दिव्य चेतना में पहुंचाते है, एक दुसरे से जुड़ा हुआ है यह | जीव चेतना मानव चेतना से काफी दूरी में है |इतना ही अंतर है |

मानव चेतना में न्याय प्रवृति है और जीव चेतना में विषय प्रवृति है, इतना ही अंतर है, कितना दूरी हो गया – बहुत दूरी है | जीव चेतना में विषयों से ग्रस्त रहते है और मानव चेतना में विषयों से अलिप्त रहते है | "क्या मानव चेतना में जीता आदमी सोता नहीं है?" ऐसा पूछा जाता है, मानव सोता है सोते समय में भी जागृत रहता है | अभी के संसार के अनुसार, मनुष्य निद्रा में जागृत नहीं रहता, हम लिखे है जाग्रति के बाद निद्रा में भी जीवन जगा रहता है, स्वप्न में भी रहता है जाग्रति में तो रहता ही है | निद्रा जड़ प्रकृति शरीर की आवश्यकता है चैतन्य प्रकृति की नहीं है |

(अक्टूबर २०११, अमरकंटक)

जिज्ञासा: एक बार पुन्ह: अध्ययन से ले कर, साक्षात्कार, अनुभव तक बताइए !

उत्तर: साक्षात्कार से पहले अपन अध्ययन करते है, अस्तित्व को मूल में सह अस्तित्व रूप में बताकर अध्ययन करते है, अस्तित्व के बारे में शब्द के रूप में बोलते है, उसके अर्थ को पहचानने की कोशिश करते है, अर्थ यदि समझ में आता है, उस अर्थ के स्वरुप में वस्तु अस्तित्व में होता है |

हर शब्द का अर्थ अस्तित्व में 'वस्तु' के रूप में रहता ही है | वास्तविकता मानव कृत विधि से नहीं होता है | अस्तित्व में स्वाभाविक विधि से यह बात बनी ही हुई है - वो हमको समझ में आता है | साक्षात्कार होने की स्थिति को पहले हम समझदारी ही मानते है , समझदारी के रूप में साक्षात्कार होता है | साक्षात्कार होने के बाद अवधारणा-बोध होता है – इससे समझदारी को बल मिल गया, अनुभव होता है तो पूर्ण होता है समझदारी | अनुभव का नाम है 'दृष्टा पद' |

अब इसमें क्या बात हुई ? चक्षु गोचर, ज्ञान गोचर दो विधि है | ज्ञान गोचर कैसे होते हैं पूछा ...इसके लिए बताया हर व्यक्ति के पास कल्पनाशीलता, कर्मस्वतन्त्रता है | अपना कल्पना के अंदर 'तदाकार तद्रूप' होने की क्रिया को ज्ञान गोचर कहा है | हमने जो कुछ भी शब्द बोला, उसका अर्थ में अस्तित्व में वस्तु को समझने वाली, स्वीकार करने वाली क्रिया का नाम है कल्पनाशीलता कर्मस्वतन्त्रता | जीवन में कल्पनाशीलता निहित है, और कर्मस्वतन्त्रता निहित है | यह दोनों जीवन में ही हैं, और कहीं नहीं हैं – रासायनिक भौतिक वस्तु में नहीं है | अभी हम क्या मान के चल रहें है हमारा शरीर देख रहा है, जबकि, शरीर देखता नहीं है, शरीर तो देखने के लिए केवल माध्यम है | किसको? रूप को, वस्तु को, वस्तु को देखने के लिए एक माध्यम है | कैसे ? दृष्टि गोचर विधि से, ज्ञान गोचर विधि से | इसमें क्या होता है, वस्तु हमारा कल्पनाशीलता में आता है | हम जो वस्तु को अध्ययन कराते है , वो वस्तु आपके कल्पनाशीलता में आता है | क्यों? हम अध्ययन कराने वाले अनुभव किये रहते है, उस विधि से अनुभव मूलक विधि से अनुभव गामी पद्धति बनती है , उस विधि से आपका कल्पनाशीकता में आता है | कल्पनाशीलता में "तदाकार तद्रूप" होने वाले गुण है | उसका प्रमाण कहाँ है | मानव अपनी कल्पनाशीलता को अपने शरीर से तदाकार तद्रूप बना के रखता है यह भौतिकवादी विधि हुई, इसको नहीं मानने वाला आदर्शवादी विधि हुई | नहीं मानने मात्र से सच्चाई बोध नहीं हुआ, वे समझा नहीं पाए | अभी इस मध्यस्थ दर्शन विधि से हम समझ सकते है | "तद्रूप तदाकार" होने का कॉम्पोनेन्ट (घटक) कहाँ है , वो वस्तु कहाँ है ,ऐसा महिमा कहाँ है? उस महिमा को कल्पनाशीलता के रूप में, कर्मस्वतंत्रता के रूप में मैंने अनुभव किया - जीवन में | इसके आधार पर अध्ययन कर सकते है हर व्यक्ति |

अध्ययन क्या होता है , हर शब्द के अर्थ में वस्तु होता है | उस शब्द के अर्थ में स्थिति है, अस्तित्व के रूप में जो "वस्तु" मिलती है उसका नाम है साक्षात्कार | इसका नाम है अध्ययन का सफलता | यदि अध्ययन सफल होता है उस स्थिति में स्वाभाविक रूप में बोध होता है | बोध होने के पश्चात अनुभव होता ही है | अनुभव होने के पश्चात प्रमाण होता है | प्रमाण होने की क्रिया का नाम है जाग्रति | अनुभव होने की क्रिया का नाम है 'दृष्टा पद' | "दृष्टा पद" में आसीन होने का क्रिया है 'अनुभव' | जब दृष्टा पद में हम होते है स्वाभाविक रूप में प्रमाणित करने वाला प्रक्रिया शुरू होता है, उसका नाम है प्रमाणिकता | यह प्रमाण परम वस्तु ही है | इस ढंग से मानव चेतना की उदय होने वाली बात आती है | इससे कम में कभी नहीं होगा, ना कभी हुआ | हमारे अनुसार इससे किसी दुसरे विधि से यहाँ अनुभव में पहुँच भी नहीं सकते , दूसरा कोई विधि है भी नहीं | तदाकार तद्रूप विधि ही है इस कार्यक्रम में | इसमें पहले से हम अध्ययन कराये रहते है रूप, गुण, स्वभाव, धर्म को प्रत्येक में अविभाज्य रूप में | जो कुछ भी साक्षात्कार होता है चार अवस्था में ही होता है – पदार्थ अवस्था में, प्राण अवस्था में, जीव अवस्था में, ज्ञान अवस्था में, इसके अलावा पांचवी अवस्था अभी तक प्रमाणित नहीं है | जब कभी हमको साक्षात्कार होगा, हम दृष्टा पद में होना शुरुआत करते हैं | दृष्टा पद में होने के पश्चात अनुभव कहलाता है | अनुभव होने का दूसरा नाम है दृष्टापद, इसमें तीनो चेतना का हम दृष्टा हो जाते हैं | दृष्टा पद में होने के बाद प्रमाणित होने का बात होता है ,

प्रमाण के रूप में अभिव्यक्त होने वाली प्रवृति हो जाती है आत्मा में | आत्मा अभिव्यक्ति सहज है क्यों कि सह-अस्तित्व प्रगटनशील है | आत्मा अभिव्यक्तिशील है इस आधार पर प्रगटनशील है |

इस आधार पर अपनी परंपरा में हम जागृति को प्रमाणित कर सकते है - यदि इच्छा हो तो | अपने में इच्छा होना चाहिए इसमें दूसरा कोई वस्तु नहीं है | स्वयं को आवश्यकता महसूस होना चाहिय, दूसरा कोई आवश्यकता नहीं है | हर व्यक्ति शुभ चाहते है इस आधार पर इस प्रस्ताव को मैंने रखा |

पठन से अध्ययन पहला भाग, अध्ययन का शुरुआत साक्षात्कार से, अध्ययन का सफलता कहाँ से? - दृष्टा पद और जागृति से | प्रमाण का अभिव्यक्ति का नाम है जागृति | दृष्टा पद का नाम है अनुभव | यह हर नर नारी के लिए बहुत आवश्यक है या नहीं है अपने को सोचने की बात है |

ज्ञान-दृष्टि

(सितम्बर २०१२, अमरकंटक)

आपके अन्तःकरण में इस बात की आवश्यकता महसूस होनी चाहिए कि जीव-चेतना में जीते हुए मानव का सार्थक जीने का स्वरूप नहीं बनेगा | पहला मुद्दा यही है | यह निष्कर्ष यदि निकलता है तो मध्यस्थ दर्शन के सन्दर्भ में मैंने जो कुछ भी लिख कर दिया है, बोल कर दिया है – वह सब सहायक है | यदि यह निष्कर्ष आपमें नहीं निकलता है तो इसको आपने मात्र लिख दिया, पढ़ लिया, बोल दिया – उससे काम नहीं चलता | अनुभव से ही काम चलेगा | अनुभव, ज्ञान-दृष्टि से ही होगा | ज्ञान-दृष्टि, चक्षु-दृष्टि में आता नहीं है | वस्तु के आकार, आयतन और घन में से घन आँखों में आता नहीं है | चक्षु-दृष्टि के दृष्टि-पाट में आधा भाग ही आता है, आधा भाग ओझिल ही रहता है | ज्ञान-दृष्टि से "जीना" होता है, व्यवहार के लिए चक्षु का प्रयोग किया जाता है | ज्ञान-दृष्टि का मानव ने अभी तक उपयोग किया नहीं है | जितना भी मैंने मानवीयता के पक्ष में लिखा है वह आँखों में कहाँ आता है? वह सब ज्ञान में गण्य होता है | आदर्शवादी विधि में ज्ञान को व्यवहार में गण्य माना ही नहीं गया | यदि ज्ञान व्यवहार में नहीं आता है तो उसका क्या मतलब है? इसीलिये प्रमाणित होना बहुत आवश्यक है |

अनुभव ज्ञान-दृष्टि से ही होगा | अनुभव चर्म-दृष्टि से नहीं होगा | अभी जीव-चेतना में हम जो कुछ भी कहते हैं, सोचते हैं, करते हैं – चर्म-दृष्टि से ही कहते हैं, सोचते हैं, करते हैं |

आंशिक-ध्यान

(दिसम्बर २००८, अमरकंटक)

अध्ययन के लिए ध्यान देने की आवश्यकता है। अध्ययन के पहले पठन है। पठन के लिए भी ध्यान देने की ज़रूरत है। ध्यान पूर्वक पठन करने से श्रवण होता है, नहीं तो श्रवण ही नहीं होता है ! मनुष्य का मन एक ही साथ तीन आयामों में काम कर सकता है। जैसे - बोलना, सुनना, और देखना, ये तीनो काम मन एक साथ कर सकता है। यदि तीनो आयाम (देखना, सुनना, बोलना) जब सह-अस्तित्व प्रस्ताव के अर्थ में हो जाते हैं - तो मन स्थिर हो जाता है। यह "आंशिक ध्यान" है। इसका अभ्यास कैसे करें? इसके लिए जैसे वस्तु है, तो हमारे मन में ही वस्तु का नाम (शब्द), उसका रूप और उसका प्रायोजन – तीनों पर एक साथ ध्यान देने से 'आंशिक ध्यान' होता है | आंशिक-ध्यान पूर्वक पठन, श्रवण करना होता है। यह मन की चंचलता को हटाने का उपाय है। यदी आपको पढ़ने में मन नहीं लगता हो, इसे प्रयोग करके देख सकते हैं | इसको आप आज करना चाहें तो आज कर सकते हैं, कल करना चाहें तो कल, अगले जन्म में करना चाहें तो अगले जन्म में कर सकते हैं।

मनुष्य-जीवन की विचार-शक्ति भी तीन आयामों में काम करता रहता है। विचार का स्वरूप है - मुझे कुछ चाहिए, मुझे कुछ करना है, और मेरे पास कुछ है। इस धरती के सारे ७०० करोड़ आदमियों की विचार-प्रक्रिया इन तीन आयामों में ही है। इन तीन आयामों के अलावा आदमी के पास विचारने को और कुछ भी नहीं है। आप अपने में इसको जांच सकते हैं।

सह-अस्तित्व में अध्ययन मनुष्य की "मूल आवश्यकता" है। उसको छोड़ कर इधर-उधर भागने से थकने के अलावा क्या होगा? कुंठा के अलावा क्या होगा? निराशा के अलावा क्या होगा?

सह-अस्तित्व में अध्ययन के फलस्वरूप अनुभव होता है। फ़िर अनुभव-मूलक विधि से मानव-चेतना को प्रमाणित करने की बात होती है। अनुभव-मूलक विधि के अलावा मानवीयता को प्रमाणित करने की और कोई विधि नहीं है। मेरा यह विश्वास है, हर व्यक्ति समझने योग्य है। यदि पठन में अड़चन लगती है - तो "आंशिक ध्यान" का अभ्यास करके देख सकते हैं ।

भास्-आभास –प्रतीति

मन का वृत्ति के प्रति जो सहमति है, वही भास होना है, अर्थात मन का प्रत्यावर्तन ही 'भास' होना है

जिज्ञासा: मन और वृत्ति का जब सहमति होता है, क्या उसी समय वृत्ति में न्याय, धर्म, सत्य का तुलन होता है?

उत्तर: तुलन होने के पहले स्वीकृति होती है भास, आभास रूप में श्रवण से स्वीकृति। इसके बाद न्याय-धर्म-सत्य तुलन होने से आभास पूरा हुआ । तुलन या आभास पूरा होने के बाद प्रतीति होना। फिर अनुभव होना। अनुभव होने की स्वीकृति फिर बुद्धि में होता है, अनुभव बोध के रूप में ।

जिज्ञासा: आभास की परिभाषा में आया है – 'अर्थ अस्तित्व में वस्तु के रूप में स्पष्ट तथा स्वीकार होना।' इससे लगता है कि साक्षात्कार को ही आप आभास कह रहे हैं?

उत्तर: नहीं ! आभास का मतलब है साक्षात्कार के पहले स्वीकार होना, पहले तुलन होना फिर प्रतीति या साक्षात्कार होना।

जिज्ञासा: साक्षात्कार की परिभाषा है- 'शब्द से इंगित वस्तु अस्तित्व में स्पष्ट होना फिर प्रतीति होना'; यही 'स्पष्ट होना' 'आभास' की परिभाषा में भी है?

उत्तर: तुलन पूर्वक स्पष्ट होना, फिर प्रतीति होना- चित्त में, उसके बाद बुद्धि में स्वीकार होना |

जिज्ञासा: 'आभास' की परिभाषा 'साक्षात्कार' की परिभाषा से मिलता है, दोनों में 'स्पष्ट होना' भाषा आया है – इन्हें अलग कैसे समझें ?

उत्तर: ठीक है ना। वो तो सब मिलेगा ही । 'अलग' से कोई बात नहीं है !! वस्तु एक ही है। भास, आभास, प्रतीति में न्याय, धर्म, सत्य एक ही मुद्दा है। इसीलिए एक जैसा लगता है | इसमें मन लगाना पड़ेगा, सामान्य बुद्धि से नहीं चलेगा !

जिज्ञासा: इसके लिए आपने अनुभव दर्शन में परिभाषा दिया है –

- होने के रूप में सहअस्तित्व की स्वीकृति = भास |
- अस्तित्व की आंशिकता में प्रयोजन सहित स्वीकृति = आभास |
- अस्तित्व की प्रायोजन सहित स्पष्ट स्वीकृत = प्रतीति |
- अस्तित्व पूर्णता में, से, के लिए स्वीकृति = अनुभव |

उत्तर: बताओ! यह सटीक है या नहीं, देख लो | यही क्रमिक रूप से स्वीकृति है |

जिज्ञासा: प्रतीति में क्या होता है ?

उत्तर: प्रतीति में साक्षात्कार समाया है। साक्षात्कार के बिना प्रतीति होता नहीं। साक्षात्कार का ही दो शब्द है – 'प्रतीति' और 'साक्षात्कार'। क्या प्रतीति होना ? अनुभव प्रतीत होना, प्रमाणित होने का संभावना प्रतीत होना। आभास में गलती होने की संभावना रहता है | गलत को सही मान लेते हैं, आभास में ...प्रतीति में गलती समाप्त हो जाता है – सच्चाई भर रह जाता है | वो अनुभव में पूरा होता है |

जिज्ञासा: क्या 'भास' होने से वस्तु की संभावना बनती है - कल्पना में?

उत्तर: वस्तु तय यदि होता है – 'यही वस्तु है', तो भास है । 'वस्तु को पाना है' - यह आभास में तय होता है। प्रतीति में पाने की संभावना बन जाता है। अनुभव में पा लेते हैं, प्रमाणित होता है।

जिज्ञासा: यदी सत्य का सूचना आपसे मिलता है और वो मेरे कल्पना में आता है तभी "श्रवण" हुआ यह बात हुई थी। जैसे आपने "सत्य" शब्द कहा और यह मुझे मात्र याद हो गया तो दोनों ही स्थिति में श्रवण है?

उत्तर: सत्य 'शब्द' स्मरण में आना और सत्य 'वस्तु' के रूप में कल्पना में आना अलग है। शब्द का 'अर्थ' जब तक कल्पना में नहीं आता है तब तक श्रवण नहीं है। उसके पहले बात करना बन जाता है। तीन विधा (रूचि, मूल्य, लक्ष्य मूलक) में जिसको सत्य माना है, उसके साथ जुड़ जाता है।

जिज्ञासा: मनन का मतलब क्या है?

उत्तर: श्रवण के पश्चात बोध होने के लिए न्याय, धर्म, सत्य का तुलन होता है, हमारे आशा विचार इच्छा में स्थिरता के लिए सोचते हैं। वही श्रवण और बोध होने के बीच में होने वाली प्रक्रिया मनन है।

जिज्ञासा: इसमें दो चरण दिखते है - एक में समझने के लिए पुस्तक पर अधिक निर्भरता होती है, दूसरा जो सूचना मेरे में श्रवण रूप में तर्क समेत आ गया, अब ये शोध मुझमें ही चल रहा है; ये होना ही मनन का भाग है?

उत्तर: हाँ। मनन का शुरुआत यहीं से है |

जिज्ञासा: अभ्यास दर्शन के योगाभ्यास का एक पैराग्राफ (अनुछेद) है- उसमें श्रवण, मनन और निदिध्यासन का परिभाषा दिया है। उसमें मनन के लिए परिभाषा है- "वांछित वस्तु, देश एवं तत्व में चित्त, वृत्ति संयत होना।" उसमें वांछित वस्तु, देश, तत्व में चित्त, वृत्ति संयत होना ही "धारणा" है, ऐसा आपने लिखा है।

उत्तर: सच्चाई होने पर संयत होता है। सच्चाई नहीं होगा तो संयत नहीं होगा। रुचि मूलक विधि से कौन सा संयत होता है? किसका होता है? ये सब एक दुसरे से जुड़ा हुआ है। श्रवण मनन विधि से चित्त वृत्ति संयंत होते हैं – इसीलिए लिखा है |

जिज्ञासा: इसे थोडा स्पष्ट करें - श्रवण के बाद, अर्थात सुनकर समझने के बाद जब तुलन होता है तब उसमें चित्त, वृत्ति प्रवृत्त या स्थिर होता है।

उत्तर: 'शोध' होने का मतलब है- तुलन हो जाना। तुलन होने से निश्चय हो जाना; प्रिय, हित, लाभ के स्थान पर न्याय, धर्म, सत्य स्वीकार होता है। यह होने से निदिध्यासन हो जाता है ।

जिज्ञासा: इसमें 'वांछित वस्तु' क्या है? और 'देश एवं तत्व' क्या है?

उत्तर: वांछित वस्तु - नियम, न्याय, धर्म सत्य ही है। अस्तित्व को "देश" माना है।

न्याय, धर्म, सत्य को यदि अस्तित्व में "होने" के रुप में हम स्वीकारा तो तुलन हो गया। तुलन हो गया तो तुलन की स्थिरता हो गया। तुलन की स्थिरता हो गया तो प्रतीति हो गया। प्रतीति पूरा हो गया तो उसे अवधारणा कहा ... तो उसकी स्थिरता के लिए अनुभव हो गया।

जिज्ञासा: उसमें मनन के लिए ही लिखा है- 'श्रवण पर पूर्ण अधिकार के अनंतर उसके सारभूत भाग, अथवा वांछित भाग में चित्त वृत्ति का केंद्रीभूत करना" | क्या यही तदाकार होने की स्थिति है?

उत्तर: ये तदाकार होने के <u>पहले</u> की स्थिति है; ये पांच क्रिया में होता है | पहले श्रवण-मनन से स्थिर होना, उसके बाद केंद्रीकृत करना | केंद्रीकृत हो गया, तो साक्षात्कार में आ गए | केंद्रीकृत करना = मनन | केंद्रीकृत हो जाना = साक्षात्कार |

जिज्ञासा: साक्षात्कार के पूर्व श्रवण-मनन से 'संयत होना' आया है, इसमें 'संयंत' होने का क्या मतलब?

उत्तर: संयत होना मतलब अर्थ समझ में आ गया और स्थिर होने के लिए हम सोच रहे हैं।

जिज्ञासा: प्रतीति के लिए जो प्रयास है वही 'केंद्रीकृत' करने की बात है?

उत्तर: हाँ | कल्पनाशीलता में वस्तु स्थिर होने के बाद प्रतीति होता है। प्रतीति होने से हमको अध्ययन बोध होता है। बोध स्थिर होने के लिए अनुभव होता है। भास-आभास की स्थिरता के लिए प्रतीति, प्रतीति की स्थिरता के लिए बोध, अवधारणा की स्थिरता के लिए अनुभव। संयंत होना यदि होता है तो हम प्रतीति में आ जाते हैं। प्रतीति में आने के बाद बोध हो जाता है। अवधारणा होने के बाद उसकी निरन्तरता के लिए अनुभव चाहिए। उतना ही बात है। ये स्वयंस्फूर्त विधि से होता है। श्रवण, मनन के बाद स्वयंस्फूर्त है।

जिज्ञासा: अध्ययन विधि में जो श्रवण करते हैं, वो तो चित्रण में ही रहेगा ना ?

उत्तर: ठीक है | पहले चित्रण, चित्रण के बाद साक्षात्कार होता है। इसके बाद बोध होता है। अवधारणा के बाद संकल्पित होता है कि उसे प्रमाणित करना है। प्रमाणित करने के लिये अनुभव की आवश्यकता बनता है। इसलिए अनुभव होता है | अनुभव के बाद अनुभव-बोध होता है। तब संकल्प के अनुसार प्रमाणित करने के लिये तरीका निकलता है। उसका चित्रण होता है। चिन्तन होता है प्रयोजन का। प्रयोजन का चिन्तन हुआ, पुनः तुलन में आता है - हम न्याय, धर्म, सत्य के अनुसार प्रमाणित कर रहे हैं कि नहीं – यह आता है। अनुभव के पहले तर्क रहता है; अनुभव के बाद वस्तु तर्कसंगत हो जाता है। चित्रण से नीचे तर्क, साढ़े चार क्रिया के बाद तर्कसंगत है। इसलिए तृप्त हो जाता है जीवन।

जिज्ञासा: क्या ऐसा है की श्रवण मनन विधि से पहले सही चित्रण बनता है? और सही चित्रण होने से ही साक्षात्कार होता है ?

उत्तर: चित्रण सही होने से ही साक्षात्कार है | इसी को निदिध्यास कहा | तुलन के बाद ही यह इच्छा होता है; उसके पहले होता नहीं।

जिज्ञासा: तुलन के साथ "सही चित्रण" मतलब वस्तु का सही चित्रण कर पाते हैं तो साक्षात्कार होता है ?

उत्तर: तुलन सही होता है तब। तुलन में गलती रहेगा तो कभी भी तर्क से छूटेंगे नहीं । तर्क से जब तक जूझे रहते हैं, तब तक अनुभव नहीं होता। अनुभव के बाद तर्क संगत होना ही होता है।

मनन में क्या होता है? श्रवण विधि से न्याय धर्म सत्य कल्पनाशीलता में स्थिर होने से मनन हुआ, नहीं तो नहीं हुआ। न्याय धर्म सत्य साकार होने के आभास होने से वो पूरा हुआ। मनन होने से प्रतीत होने की तैयारी हो गया। इस विधि से साक्षात्कार होता है|

भास होना अधिकार बना ही रहता है । सूचनाओं को ग्रहण करके तुलन होता है। तुलन तो स्वयं में होता है। स्वयं में होने से आभास होने की जगह में आ गया। यही मनन है | आभास पूरा होने से प्रतीति होने की जगह में आ गये।

भास होने की क्षमता सूचना के आधार पर है। ये क्रमशः विकसित होता ही है। जिज्ञासा हो, तो होता है। जीने की आशा प्रयुक्त होता है। जीने की इच्छा होने पर आभास होता है। तभी मनन हुआ। मनन होने से प्रतीति होने की तैयारी बन गयी। फिर बोध व अनुभव होता है।

जिज्ञासा: भास् होने को कल्पना में स्वीकृति, आभास को सत्य सहज होने की सामान्य स्वीकृति कहा है, प्रतीति को निश्चयात्मक स्वीकृत, और अनुभव को पूर्ण स्वीकृति कहा है ...

उत्तर: वो सब सटीक है | भास् आभास में शब्द के साथ स्वीकृति, कल्पना रूप में | प्रतीति, अनुभूति में शब्द और कल्पना खत्म | भास्-आभास में मेधस का रोल रहता है, प्रतीति केवल जीवन में होता है |

अभी शुरुआत में 'स्वीकृति' का मतलब सूक्ष्म इच्छा ही है – अपने इच्छा को व्यक्त करना | अभी हम अध्ययन से स्वीकारने में आ जाते हैं, यह इच्छा हुआ | परन्तु ऐसे जीना कहाँ बनता है ? जीने के लिए साक्षात्कार होना, अवधारणा होना, अनुभव होना आवश्यक है | उसके पहले यह वस्तु जीने में नहीं आएगा | किसी को नहीं आएगा !

जिज्ञासा: श्रवण-मनन के लिये अभ्यास दर्शन में परिभाषा है- " देश, काल, तत्व में चित्त वृत्तियों का सयंत होना पाया जाता है । यही धारणा है" | उसके बाद लिखा है- "धारणा (संयंत होने) पर पूर्ण अधिकार के अनंतर उसके सारभूत भाग में अथवा वांछित भाग में चित्त, वृत्ति का केंन्द्रीभूत होना ही निष्ठा एवं ध्यान है।"

उत्तर: वो लिखा है, अनुभव विधि के लिए | अध्ययन विधि अथवा श्रवण विधि में आपके श्रवण से धारणा होता है | श्रवण के साथ मनन होने से चित्त में स्थिरता आता है - श्रवण का | श्रवण के साथ तुलन होने से, मनन प्रक्रिया में आने से, साक्षात्कार होना, तब धारणा हुआ | किसका? न्याय-धर्म-सत्य का | अवधारणा इसका नाम | मनन पूरा होने से ध्यान शुरुआत है, ध्यान में आने से प्रतीति होता है – यही निदिध्यासन | फिर अनुभव प्रमाण होता है । श्रवण का पूर्णता ही अध्ययन विधि में मनन है | मनन का पूर्णता ही ध्यान अथवा निदिध्यासन है | निदिध्यासन का पूर्णता ही अनुभव है | ऐसा बना हुआ है, कड़ियाँ |

इधर धारणा जो है, पहले श्रवण विधि में साक्षात्कार के लिए, फिर अवधारणा विधि में, अनुभव के लिए | ऐसे बना है बात | अनुभव मूलक विधि से धारणा – बुद्धि में होता है, इसका निरंतरता रहता है | यही धर्म है | धारणा ही धर्म है, यह कहा है | पहले श्रवण, उसके बाद तुलन होने से मनन हो गया | मनन होने से क्या हुआ ? हमारा चित्त-वृत्ति सच्चाई के लिए समर्पित हुआ – यही केंद्रीकृत होना है - तो अपन साक्षात्कार में आ गए | साक्षात्कार होने से वस्तु हमको प्रतीत हो गया | यही निदिध्यासन है | इसके बाद अवधारणा, बोध, अनुभव होना सहज है |

:: अध्ययन में पवित्रता / मनन में व्यवहाराभ्यास ::

अपराध (परधन, परनारी/परपुरुष, परपीड़ा) के बारे में सोचते, अन्याय के विचार से, झूठ बोलने से अध्ययन संभव ही नहीं है; केवल पठन ही होता है। अपराधिक विधि में जीते हुए हम पठन कर सकते हैं, किंतु अध्ययन नहीं कर सकते। जीने की विधि को जब तक बदलने की इच्छा नहीं हो, तब तक अध्ययन नहीं कर सकते। भाषा और तर्क भर तक पहुँच सकते है | इसलिए कहा- भाषा कोई प्रमाण नहीं है। प्रमाण जीना ही है। जीना मतलन आचरण | आचरण को आपके सामने रख दिया है | नियम त्रय, मानवीय स्वभाव, चरित्र, सम्बन्ध, मूल्य, तन मन धन का सदुपयोग, सब बता दिया | इस विधि से जीना" मतलब विचार, व्यवहार और व्यवसाय – तीनों आ गया |

जिज्ञासा: अध्ययन के क्रम में व्यक्तिवादिता ही सबसे बड़ा रोड़ा लगता है .... स्वयं में अभिमान, दुसरे के प्रति घृणा, उपेक्षा, परपीड़ा ... यह सब अवधारणा में चले जाता है ?

उत्तर: अवधारणा में यह सब कोई रहता नहीं | यह सब चित्रण तक ही है, सारा पंचायत | यह सब तुलन विधि से होकर reject (नकारना) हो जाता है |

साक्षात्कार के लिए निरंतर प्रयत्न करने की आवश्यकता है। ऐसे प्रयत्न करते हुए हमारी दिनचर्या भी उसके अनुकूल होना आवश्यक है। अपने "करने" का यदि अपने "सोचने" से विरोधाभास रहता है तो साक्षात्कार नहीं होता। पुनः हम शरीर-मूलक विधि में ही रह जाते हैं। आवेश के साथ अध्ययन नहीं होता। आवेश अध्ययन के लिए अड़चन है।

पहले रास्ता ठीक होगा, तभी तो गम्य-स्थली तक पहुंचेंगे! रास्ते पर चल कर ही गम्य-स्थली तक पहुँचा जा सकता है। रास्ते पर हम चलें नहीं, और हमें गम्य-स्थली मिल जाए, ऐसा कैसे हो? इसके लिए हमें यह जांचने की ज़रूरत है - क्या हमारा "करना" (जीना) हमारे गम्य-स्थली तक पहुँचने के लिए अवरोध तो पैदा नहीं कर रहा है? हम जैसा सोचते हैं, वैसा करें भी, वैसा कहें भी, वैसे फल-परिणामो को पाएं भी, वैसा प्रमाणित भी करें - यही "गम्य-स्थली" है।

जैसे - हम "नियम" का अध्ययन कर रहे हैं, और हमारा आचरण नियम के विपरीत हो - तो इसमें अंतर्विरोध हो गया। इस अंतर्विरोध के साथ नियम का साक्षात्कार नहीं होता। अध्ययन के साथ "स्वयं का शोध" चलता रहता है। मैं जो समझ रहा हूँ, क्या मैं उसके अनुरूप जी रहा हूँ? इसको पूरा करने के लिए ही 'अनुकरण विधि' है।

अध्ययन एक "निश्चित साधना" है। अध्ययन रुपी साधना के साथ "समाधान-समृद्धि" के मॉडल का अनुकरण किया जा सकता है। यह आदर्शवाद के प्रस्ताव से भिन्न है, जिसमें साधना के साथ सामने कोई मॉडल रहता नहीं है। आदर्शवादी साधना में अनुकरण करने की

कोई व्यवस्था नहीं है। भौतिकवाद में साधना का कोई मतलब ही नहीं है। भौतिकवाद में उपलब्धि या गम्य-स्थली के रूप में यंत्र है। यंत्र को खरीदो और प्रयोग करो - इतना ही है।

जिज्ञासा: "समाधान का अनुकरण" से क्या आशय है?

उत्तर: शब्द या लेख के आधार पर अनुकरण - पठन के रूप में। उसके बाद अर्थ के आधार पर अनुकरण - अध्ययन के रूप में। अध्ययन के फलन में अनुभव के आधार पर स्वत्व हो जाता है। अनुकरण का विधि और प्रयोजन यही है।

अध्ययन को छोड़ कर केवल अनुकरण करने से कुछ समय तक तृप्ति है, पर तृप्ति की निरंतरता नहीं बनती। यही अध्ययन और अनुभव की आवश्यकता है।

अनुकरण विधि में सूचना को दोहराने से अर्थ की ओर ध्यान जाता ही है। अर्थ को जब शोध करते हैं तो अपना स्वत्व होने की जगह में पहुँच ही जाते हैं। अध्ययन को आत्मसात करने की विधि है - अनुकरण।

अनुभव के पहले प्रमाण नहीं है। केवल अनुसरण-अनुकरण पर्याप्त नहीं है। (अनुभव मूलक विधि से) जीने में प्रमाणित होने पर ही "अच्छा होना" होता है।

जिज्ञासा: हम अभी अध्ययन-क्रम में हैं। जितना समझे हैं, उसको अनुकरण-अनुसरण पूर्वक जीने का प्रयास भी कर रहे हैं। फिर भी उत्साह कभी कभी ऊपर-नीचे होता रहता है। उत्साह को कैसे बनाए रखें?

उत्तर: अनुभव के लिए उत्साह को बनाए रखिये - सूचना के आधार पर। 'आगे चलकर इसको अनुभव करेंगे' - इस तरह से । सौ हथौड़े की चोटों के बाद एक विशाल पत्थर टूटता है। ९९ चोटें रही, तभी १०० वी चोट पर पत्थर टूटता है। जितनी सीमा तक समझ को जी पाते हैं, उससे खुशी भी मिलती है - जिससे आगे के लिए उत्साह बना रहता है। प्रमाण अनुभव के बाद ही है।

विरक्ति विधि से मैंने साधना किया था। साधना-काल में हम हर समय खुश-हाली ही मनाते रहे। कभी अभावग्रस्त या पीड़ा-ग्रस्त नहीं हुए। जबकि साधना में हम भूके ही रहे! आपके लिए अध्ययन का मार्ग कोई विरक्ति-विधि नहीं है। इसीलिये मैं मानता हूँ, सर्व-मानव के लिए सुलभ अध्ययन-विधि ही है।

:: मनन का महत्त्व ::

२००७, २०१२, अमरकंटक

प्रकृति में चार अवस्थाएं हैं - पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्था, और ज्ञानावस्था। विकल्पात्मक विधि से सहअस्तित्व समझ में आने के बाद चार अवस्थाओं का ऐसे नामकरण करना संभव हुआ| चार अवस्थाओं का नाम आपने सुना है, उनको समझना 'अध्ययन विधि' से होता है| रूप, गुण, स्वभाव, धर्म का अध्ययन होता है| जीवन इनको पहचानता है| रूप को भी जीवन ही पहचानता है| चारों अवस्थाओं के रूप को पहचानने में विश्वास हो गया है| इनके गुण, स्वभाव और धर्म स्पष्ट होने के लिए अध्ययन ही एक मात्र विधि है| अध्ययन पूर्वक हर अवस्था का रूप, गुण, स्वभाव, धर्म स्वीकृत होता है, साक्षात्कार होता है, अनुभव होता है और आगे की पीढ़ी के साथ प्रमाणित होता है|

सूचना इन्द्रियों से आती है| भाषा स्वीकार होकर चित्त में चित्रित हो जाता है| भाषा से अस्तित्व में वस्तु इंगित होती है| वस्तु में रूप-गुण-स्वभाव-धर्म अविभाज्य रूप में वर्तमान होता है| हर अवस्था में रूप, गुण, स्वभाव, धर्म का क्या स्वरूप है, वह आपके सम्मुख सूचना प्रस्तुत करते हैं, और उसको जाँचने (निरीक्षण, परीक्षण, सर्वेक्षण) का काम आपके लिए छोड़ देते हैं| जाँचने पर आपको पता चलता है - हर इकाई में रूप, गुण, स्वभाव, धर्म होता ही है|

जो हम समझे हैं, उसको आपके लिए 'सूचना' रूप में प्रस्तुत करते हैं - जो सारी वास्तविकताओं के रूप, गुण, स्वभाव, धर्म का विशलेषण है| यह विशलेषण आपके लिए पहले 'सूचना' है, फिर 'सोच-विचार' है, उसके बाद रूप और गुण का चित्रण है, फिर स्वभाव और धर्म का साक्षात्कार है| इस तरह चित्त के दो भाग हैं - एक भाग जिसमे चित्रण होता है, दूसरा वह जो चित्रण की सीमा में नहीं आता। चित्रण भी हो, साक्षात्कार भी हो - समझने की स्थली यहाँ है|

ये चारों अवस्थाएं रूप, गुण, स्वभाव और धर्म के संयुक्त रूप में हैं - इसमें से रूप आपकी आँखों में दिखाई पड़ता है, इससे आपने स्वीकार लिया कि ये चारों अवस्थाएं हैं| ये चारों अवस्थाएं अस्तित्व में हैं| व्यापक वस्तु में सम्पृक्त प्रकृति के रूप में चार अवस्थाएँ हैं| हर अवस्था का अपने स्वरूप में होना है| होने के रूप में शाषवत है - यह साक्षात्कार होता है|

साक्षात्कार जिस बात का होना है उसका पहले वृत्ति में विचार एवं तुलन होता है| यहाँ यह स्पष्ट होता है कि प्रिय-हित-लाभ तुलन इन्द्रिय-सीमावर्ती है, जबकि न्याय-धर्म-सत्य तुलन ज्ञान सीमावर्ती है| फिर तर्क विधि से हम प्रिय-हित-लाभ और न्याय-धर्म-सत्य की तुलना में पहुँच जाते हैं| दोनों की तुलना में क्या चाहिए? तो अंततोगत्वा यह स्वयं में निषचयन होता है - न्याय-धर्म-सत्य चाहिए! यह निश्चयन होने के बाद चित्त में साक्षात्कार होना शुरू होता है|

जो सूचना मिलती है, उसके गुणानुवादन पूर्वक न्याय-धर्म-सत्य और प्रिय-हित-लाभ में भेद स्पष्ट हो जाता है, स्वीकार हो जाता है| इन दोनों के बीच तुलन होने पर "निश्चयन" होता है – ‘ यही न्याय धर्म सत्य’ है| ऐसा मनन पूर्वक निश्चयन होने के आधार पर साक्षात्कार

होता है| साक्षात्कार होने पर बोध और अनुभव होना स्वाभाविक हो जाता है| तुलन में यह निश्चयन हुए बिना साक्षात्कार होने का नौबत ही नहीं आती| वह प्रक्रिया ही शुरू नहीं होती। साक्षात्कार तक पहुँचने में ही सारा समय लगता है| तुलन में प्राथमिकता को तय करने में ही हम पीछे रह जाते हैं| रूप और गुण के बारे में तुलन प्रिय-हित-लाभ के अर्थ में ही होता है| स्वभाव और धर्म के बारे में तुलन न्याय-धर्म-सत्य के अर्थ में ही होता है| दूसरा कोई तरीका ही नहीं है| मेरे अनुसार अभी (आप लोगों को) इसी जगह ज्यादा ध्यान देने की ज़रुरत है| श्रवण का मतलब है लिखा हुआ को समझना – भाषा के रूप में| इसको भी हम कितना कर पाते हैं, कितना अपना ही जोड़ लेते हैं, देख लो!

श्रवण के बाद आता है मनन| हम सुनकर (श्रवण कर) तुलन को पूरा करते नहीं हैं, छोड़ कर भाग जाते हैं! श्रवण के बाद मनन नहीं करते| फिर निश्चयन होता नहीं है, साक्षात्कार होता नहीं है, बोध होता नहीं है, अनुभव होता नहीं है, भाषा (श्रवण) भर रह जाता है| अभी क्या है, हम पहले से जो समझें हैं, सोचे हैं, जीए हैं, - हमारा पूर्व स्मृतियाँ, पूर्वाभ्यास इसमें अडचन करता है, ये सारा प्रिय हित लाभ है| इसमें साक्षात्कार की वस्तु नहीं है|

तुलन अपने में मनन प्रक्रिया है| साक्षात्कार से पहले मनन नाम की प्रक्रिया है| मनन में मन को लगा देने से निश्चयन पूरा होता है| शब्द के अर्थ में यदि मन लगाते हैं तब वह 'मनन' कहलाया। शब्द तक ही रह गए तो 'स्मृति' कहलाया। स्मृति में प्रिय-हित-लाभ सीमावर्ती चित्रण बनता है, लेकिन न्याय-धर्म-सत्य सीमावर्ती चित्रण अनुभव से पहले बन नहीं पाता। मनन पूर्वक यह स्पष्ट होता है कि रूप और गुण प्रिय-हित-लाभ दृष्टि की सीमा में है तथा स्वभाव-धर्म न्याय-धर्म-सत्य दृष्टि में आता है | यही निश्चयन की स्थली है| यह निश्चयन होने के बाद साक्षात्कार-बोध-अनुभव होने में देर नहीं लगती।

न्याय-धर्म-सत्य के साथ जुड़ने वाले आयाम स्वभाव और धर्म है| यही मुख्य बात है | यही निश्चयन होने वाली बात है |अध्ययन विधि में चिन्हित अंगुलीन्यास करने योग्य जगह यही है | यह यदि पूरा होता है तो अध्ययन हुआ, नहीं तो कोई अध्ययन नहीं हुआ | सूचना के रूप में जो सारी बात आपके पास आ चुकी है, वह आपके आचरण में चरितार्थ होना है | चरितार्थ होने के लिए साक्षात्कार होना ही पड़ेगा। साक्षात्कार होने के लिए तुलन में मनन पूर्वक निश्चयन होना ही पड़ेगा। यही है न्याय धर्म सत्य का आभास पूरा होना| मनन से हमारा कल्पनाशीलता वस्तु में स्थापित हो गया| इसके बाद साक्षात्कार के लिए जाता है| न्याय धर्म सत्य के प्राथमिकता होने से साक्षात्कार होता है – यह कहा है हमने...

प्रिय-हित-लाभ जितना भी तुलन है - वह चित्त में चित्रण हो जाता है| प्रिय-हित-लाभ सीमावर्ती जितनी भी उपलब्धियाँ हैं, गति है, स्थिति है - वे सब चित्रण तक पहुँच के स्थिर हो जाते हैं| ये सभी इन्द्रियगोचर हैं, जो रूप और गुण तक ही हैं| स्वभाव और धर्म का साक्षात्कार होने पर बोध और अनुभव होना स्वाभाविक है| प्रिय-हित-लाभ शरीर संवेदना से सम्बद्ध है| कोई भी वस्तु को जब तक हम केवल शरीर संवेदना से सम्बद्ध करते हैं तब तक हमारा अध्ययन पूरा नहीं हुआ| वस्तु को उसके स्वभाव और धर्म के साथ सम्बद्ध कर पाये - तब हमारा अध्ययन पूरा हुआ| अध्ययन पूरा होता है तो साक्षात्कार होता ही है| साक्षात्कार पूरा होता है तो बोध व अनुभव होता ही है| अध्ययन पूरा होने पर हम पहले स्वयं में विशवस्त हो जाते हैं, फिर दूसरों के साथ अपने सम्बन्ध को प्रमाणित करने लग जाते हैं|

स्वयं में विशवास प्रमाणित करते समय हिलता नहीं है | मेरा विश्वास क्यों नहीं हिलता? मैं अनुभव किया हूँ - इसलिए मेरा विशवास नहीं हिलता।

:: साक्षात्कार ::

जिज्ञासा: साक्षात्कार को एक बार पुन्ह: बताइए

उत्तर: पुनः एक बार – साक्षात्कार का मतलब, शब्द के अर्थ के रूप अस्तित्व में वस्तु को पहचानते है , उसमे क्या पहचानना– रूप के साथ गुण, गुण के साथ स्वभाव, स्वभाव के साथ धर्म को पहचाना, इतनी ही बात है , यह पहचान होता है तो हम 'समझे' नही तो काहे को समझे? उसके लिए अध्ययन विधि बताया | अध्ययन में रूप गुण,स्वभाव , धर्म, के बारे में, चारों अवस्था में स्पष्ट कर दिया | रूप जो है, आकार, आयतन, घन के रूप में, सम, विषम मध्यस्थ के रूप में कार्य करता हुआ गुण के रूप में, स्वभाव को पदार्थ अवस्था में अलग, प्राण अवस्था में अलग, जीव अवस्था में अलग, ज्ञान अवस्था में अलग बताया है | धर्म को भी ऐसे ही चारों अवस्था में बताया है | यह ही साक्षात्कार होता है, यह कैसे आएगा, अध्ययन विधि से ही आएगा दूसरा कोई विधि से आएगा नहीं | किसी भी विधि से, और कोई विधि से यह चारों भाग को समिलित रूप में एक वस्तु को पहचानने की विधि आता ही नहीं | इसका background (पृष्ठभूमी) है अध्ययन | अध्ययन से चारों अवस्था का स्वरुप, रूप, गुण, स्वभाव, धर्म को स्पष्ट किया - वो अध्ययन है | यदि बिना किसी अध्ययन के होता होगा तो हमें बताने की क्या ज़रुरत ? अध्ययन विधि से ही ये पूरा होता है | रूप के साथ इन सब बात को पूर्ण-स्वीकारने वाली बात आता है, इस स्थिति में हम 'अनुभव' कहते है | उसका (अनुभव का) क्या बात है? हम दूसरों को समझाने योग्य हो पाते है दूसरों को बोध कराने योग्य होते है | इसको "चेतना विकास" कहा है |

जिज्ञासा: दो चीज़े स्पष्ट होना ज़रूरी है, साक्षात्कार होने के बाद बोध होने पर क्या चीज़ और समझ में आया जिससे इन दोनों में हम अंतर कर रहे हैं ? फिर बोध होने के बाद और अनुभव होने में और क्या अधिक समझ में आया की उसको "अनुभव" कह रहे है |

उत्तर: साक्षात्कार में जो होता है वो बोध में पक्का हो गया, उसकी स्थिरता आ गई, और कुछ नहीं हुआ | साक्षात्कार में चारों भाग पहुँच गया –रूप, गुण, स्वभाव ,धर्म | इसमें से रूप जो है चैतन्य रूप पहुंच गया साक्षात्कार में -साथ में चैतन्य का स्वभाव धर्म | भौतिक रूप और गुण, चित्रण में ही रुक गया, चित्त में | बोध में क्या पहुंचा – धर्म और स्वभाव पहुंचा | दुसरे विधि से, नियम, नियंत्रण, संतुलन, न्याय ,धर्म ,सत्य, यह छ: चीज़ पहुंचा -साक्षात्कार में | नियम में जो अर्थ है पहुँच गया साक्षात्कार में , नियंत्रण में क्या चीज़ है वो पहुँच गया , संतुलन में क्या चीज़ है वो पहुँच गया, न्याय धर्म सत्य में क्या चीज़ है वो पहुँच गया साक्षात्कार में |

रूप गुण स्वभाव उसका नाम - समग्र रूप में कहा | जब यह छ: चीज़ पहुंचा चित्त में, उसमे से बोध में क्या होता है- 'धर्म और सत्य' आता है – इसमें स्वभाव समाया रहता है | बाकी चार चीज़ (नियम, नियंत्रण, संतुलन, न्याय) रुक गया साक्षात्कार में | धर्म और सत्य

दोनों पहुंचा – बुद्धि में | सत्य कैसा पहुंचा – सहअस्तित्व रूप में सत्य पहुंचा और धर्म मानव में सुख धर्मी के रूप में , जीवों में आशा के रूप में , प्राण अवस्था में पुष्टि धर्म के रूप में , पदार्थ अवस्था में अस्तित्व धर्म के रूप में.. 'होने के रूप' में पहुंचा | यह पहुँचने पर बुद्धि से मात्र सत्य पहुंचा अनुभव (आत्मा) में | सत्य पहुँचने पर सह अस्तित्व ही शेष रह गया – आत्मा में | पुनः सहअस्तित्व अनुभव-बोध होता है उस समय में क्या जुड़ गया – बुद्धि में जो शेष था स्वभाव-धर्म वो जुड़ गया | सहअस्तित्व चिंतन के रूप में चित्त में पहुंचा तो क्या जुड़ गया – नियम ,नियंत्रण संतुलन, न्याय जुड़ गया, धर्म सत्य के साथ,ये छः चीज़ पहुँच गया, इतना ही तो अध्ययन का सार है | कहीं से भी पकड़ लो कहीं से भी छोड़ लो | पहले जड़ clear (स्पष्ट) कर लो फिर फल समझ में आता है | या फल यदी पहले पकड़ में आ जाये तो 'जड़' समझने की आवश्यकता बनती है | जैसा अपन एक फल खाते है सेब का ... झाड तो यहाँ नहीं है, जड़ भी यहाँ नहीं है, 'इसका जड़ होगा' ऐसा कल्पना में आता है, झाड का फल है या मट्टी का बनाया गया फल है या कागज़ का बनाया गया फल है, यह समझ में आता है | यह पता लगता है की नहीं? इन दोनों को अपन कृत्रिमता कहते है यह तो, कागज़ का यदि फल का स्वरुप बनाया हो उसे कृत्रिम कहते है, मट्टी से फल का आकार बना के रंग लगा दिया हो उसे कृत्रिम फल कहते है | वास्तविक फल कौन सा है - जो झाड में पकता है | आज भी वास्तविकता को हम विश्वास करते है या कृत्रिमता को? यदि कृत्रिम फल से हम तृप्त हो सकते थे तो उसको भी सेब मान लेते | कृत्रिम फल से हमको तृप्ति होती नहीं अभी तक तो हुई नहीं कल यदि हो जाये तो बहुत अच्छा, स्वागत है | इस ढंग से हम अध्ययन पूर्वक कल्पना मात्र से तृप्त होंगे या 'वस्तु' से तृप्त होंगे, ये सोच सकते हैं |

पूरा का पूरा तर्क का अधिकार सब के पास है - कल्पनाशीलता का सब के पास अधिकार है | कर्मस्वतंत्रता का सब के पास अधिकार है | इनका प्रयोग से हम साक्षात्कार, बोध, अनुभव पूर्वक प्रमाणित होते है | मूल मुद्दा इतना ही है | अभी कल्पनाशीलता कर्मस्वतन्त्रता का प्रयोग विधि उससे इन बातो को प्रमाणित करने की विधि- चारों अवस्थाओं में जो रूप ,गुण,स्वभाव, धर्म है उसको प्रमाणित करने की विधि, व्याख्या करने की आवश्यकता है, सूचना देने की आवश्यकता है | सूचना किताब से होता है , मनुष्य के समझाने से समझ में आता है | समझ में आने के बाद साक्षात्कार होता है | इतना ही बता है |

जिज्ञासा: साक्षात्कार में यदि स्वभाव और धर्म दोनों दिखा, तो बोध में उससे अतिरिक्त क्या दिखा या उससे कम हो गया ?

उत्तर: साक्षात्कार में रूप, गुण, स्वभाव, धर्म संयुक्त रूप में दिखा |रूप,गुण, स्वभाव, धर्म अविभाज्य है, वही साक्षात्कार होता है - सर्वप्रथम | उसके बाद चित्त में रूप और गुण दोनों रह जाते है - चित्रण में | चारो अवस्था में रूप और गुण की व्याख्या एक ही है – आकार, आयतन, घन रूप में रूप, और सम विषम मध्यस्थ रूप में गुण | गुण जो है ना मनुष्य का जो उर्जा होता है- कार्य उर्जा के रूप में समझ में आता है | सामय उर्जा तो घटता नहीं है, न बढ़ता है | कार्य उर्जा बढ़ता घटता है | कार्य उर्जा को किसी वस्तु को रचना देने में, समझाने में लगाते है वो "सम" कहलाया | और किसको भ्रमित करने में, या विनाश करने में लगते है वो "विषम" कहलाया | अभी हम कितना कर रहे है आप ही सोचो | भ्रमित करने में जब लगाते है अपना शक्तियों को, विनाश करने में जब लगाते हैं, इसका नाम है अपराध | इसमें छानने में कितना बचता है, सोच लो...यह इसी प्रकार छनता है, यहाँ चित्त में यह दोनों रूप-गुण रह जाते है, उसके बाद बोध में चले जाते है स्वभाव और धर्म | जा करके वह स्वभाव बुद्धि में drop (रुक) हो जाता है | और उसके बाद धर्म जाता

है आत्मा के पास और अनुभव में आता है | उसी आधार पर धर्म को अपन बताये ही है, चारों अवस्था का धर्म को हमने कैसा अनुभव किया उसको हम देखा है |

अभी इसके पूर्व के ग्रंथों में क्या कहीं लिखा भी है, किसी ने इसको छुआ भी है? - पदार्थ धर्म क्या है, प्राण धर्म क्या है, जीव धर्म क्या है, मानव धर्म क्या है ? कहीं लिखा भी है, कहीं लिखा हुआ आपने पढ़ा भी है? क्यूंकि अनुभव में आया नहीं है इसीलिए नहीं हुआ, अनुभव में आने का जिज्ञासा ही नहीं है, वो तो ज्ञान ही नहीं होता तो क्या अनुभव होगा ! वही तो इस अनुसंधान का drastic effect (तीक्ष्ण प्रभाव) है, इसीलिए (आप लोगों को) nervous (बेचैन) होना पड़ता है ... (की) इतने से इतना कैसे कहा जाये | कैसे कहा जायेगा ... अनुभव के आधार पर कहा जायेगा और कौनसा आधार होता है, अनुभव के आधार पर कहा जाये, अनुभव करो और बताओ | यह सब iit delhi (आय.आय.टी दिल्ली) में हो चुके है कर्मकांड | IIT (आय.आय.टी) में कोई ज्ञान नहीं है – इसको हम अछे से देखकर आ चुके हैं | यंत्र को छोडकर, गणित को छोडकर वो कुछ मानने को तैयार ही नहीं हैं ...क्या किया जाय? जबकी, यंत्र और गणित, दोनों को मानव ही बनाता है | फिर आधार आदमी होगा या यंत्र, इसे तय करना पड़ेगा !!!

जिज्ञासा: साक्षात्कार और बोध में क्या होता है ?

उत्तर: अध्ययन, बोध, और अनुभव - उसके बाद प्रामाणिकता की हालत आती है | अध्ययन की आरंभिक स्थिति है - शब्द, उसके बाद है शब्द से इंगित वस्तु। इंगित वस्तु स्मरण से चल कर हमारे साक्षात्कार में उदय होना। दूसरी स्थिति है - जो साक्षात्कार हुआ, वह पूरा स्वीकृत हो जाना, सदा-सदा के लिए जीवन में | इसी का नाम है - संस्कार या वस्तु-बोध | यही 'अवधारणा' कहलाया | वस्तु बोध होने के पश्चात् होता है - अनुभव। बोध होने और प्रमाणित होने के बीच तृप्ति-बिंदु का नाम है - अनुभव।

हम किसी वस्तु को समझने जाते हैं, तो वस्तु को समझने पर जब हम तृप्त होने लगते हैं तो वस्तु का स्वभाव, धर्म, प्रयोजन हमारी बुद्धि में निहित हो जाता है - यही "समझ" है | यह जब तक नहीं होता है, तब तक हम समझे कहाँ हैं? शब्दों की सीमा में समझ का प्रमाण होता नहीं है | शब्दों की सीमा में वार्तालाप हो सकता है, चर्चा हो सकती है | प्रमाण तो होता नहीं है | मानव में समझने पर तृप्ति है | वह तृप्ति बिंदु स्वयं में एक कम्पन की स्थिति है, जो एक खुशहाली है | बोध और प्रमाण के बीच कम्पन की यह स्थिति आत्मा में होती है | एक बार जो वह तृप्ति-बिंदु मिलता है तो फिर वह निरंतर आवंटित होने के लिए बना रहता है | यही आकर्षण और प्रत्याकर्षण का तृप्ति-बिंदु है |

:: अवधारणा – बोध ::

जिज्ञासा: अवधरणा क्या है ?

उत्तर: अवधारणा = अभ्यास के लिए प्राप्त स्वीकृतियां | अभ्यास किस लिए? अभ्युदय को अपनाने के लिए, अपना स्वत्व बनाने के लिए। अभ्युदय का मतलब है - सर्वतोमुखी समाधान। जैसे किसी झाड के बीज को धरती में हम डालते हैं, उसको सींचते हैं, ताकि उसका वृक्ष हमारा स्वत्व बन सके। उसी तरह अवधारणा अभ्युदय का बीज है। स्थिति-सत्य, वस्तु-स्थिति सत्य, और वस्तु-गत सत्य की अवधारणा होती है। साक्षात्कार = शुभ के लिए जितनी भी सूचना मिलती है उससे जो वस्तु इंगित होता है, उसको कल्पना में भर लेना। साक्षात्कार चित्त में होता है।

अवधारणा प्राप्त होने, साक्षात्कार होने तक ही मनुष्य का पुरुषार्थ है। अवधारणा प्राप्त होने के बाद, साक्षात्कार होने के बाद परमार्थ ही है। स्थिति-सत्य, वस्तु-स्थिति सत्य, और वस्तुगत सत्य की अवधारणा का बुद्धि में बोध होता है। उसके बाद स्थिति-सत्य अनुभव में आता है। सत्ता में संपृक्त जड़-चैतन्य प्रकृति - सह-अस्तित्व ही स्थिति-सत्य है। यह अनुभव में आता है। अनुभव में आने पर इसकी निरंतरता हो जाती है।

स्थिति-सत्य में ही वस्तु-स्थिति सत्य और वस्तु-गत सत्य का प्रगटन होता है। वस्तु मूलतः रासायनिक, भौतिक, और जीवन स्वरूप में है। सम्पूर्ण वस्तुएं सत्ता में भीगी, डूबी, घिरी हैं। भीगे होने से ऊर्जा-सम्पन्नता है, डूबे होने से क्रियाशीलता है, घिरे होने से नियंत्रण है। यही सह-अस्तित्व है। यही नियति है। नियति विधि से ही हम ऊर्जा संपन्न हैं, नियति विधि से ही हम बल-संपन्न हैं, नियति विधि से ही हम नियंत्रित हैं। सह-अस्तित्व नित्य प्रगटन-शील है - यही नियति है। मनुष्य का जीवन और शरीर दोनों नियति-विधि से हैं। नियति विधि से ही हम साक्षात्कार तक पहुँचते हैं।

सह-अस्तित्व नित्य प्रगटन-शील होने से अपने प्रतिरूप के स्वरूप में मानव को प्रस्तुत कर दिया - उसका प्रमाण अनुभव-मूलक विधि से ही होता है। इस तरह ईर्ष्या मुक्ति, द्वेष मुक्ति, अपराध-मुक्ति, और भ्रम-मुक्ति हो जाते है। ईर्ष्या, द्वेष, अपराध, और भ्रम से मुक्त हो जाना ही अनुभव संपन्न होने का प्रमाण है। ईर्ष्या, द्वेष, अपराध, झूट और भ्रम से हम सम्बद्ध हैं, मतलब अनुभव तो क्या, साक्षात्कार भी हुआ नहीं है। यही "स्व-निरीक्षण" में देखने की बात है। यह सब अवधारणा के पहले – चित्रण में ही स्वतः हो जाता है |

अनुभव का प्रमाण होता है। प्रमाण है - परंपरा में पीढी से पीढी अनुभव अंतरित होना। इसका नाम है - "अनुभव मूलक विधि"। अनुभव-मूलक विधि के बिना प्रमाण नहीं है। सत्ता स्वयं ज्ञान-स्वरूप है। चैतन्य-प्रकृति को सत्ता ज्ञान-स्वरूप में प्राप्त है। ज्ञान का प्रमाण मनुष्य व्यवहार में न्याय-स्वरूप में प्रस्तुत करता है, उत्पादन में नियम-नियंत्रण-संतुलन रूप में प्रस्तुत करता है |

जिज्ञासा: मनन के बाद साक्षात्कार पूर्वक 'अवधारणा' की बात है। अवधारणा के लिए आपने लिखा है "परिपुष्ट अनुमान; बुद्धि में होने वाली बोध ही अवधारणा है; जो मन, वृत्ति, चित्त में होने वाली भास, आभास और साक्षात्कार से अधिक स्थिर है।"

उत्तर:- उसकी सुदृढ़ता, बोध जो है, इन तीनों भाग भास आभास साक्षात्कार में जो प्रक्रिया है, उसकी दृढता का नाम, स्थिरता का नाम है अवधारणा, यही अध्ययन विधि से बोध है । प्रतीति का अंतिम छोर अवधारणा है | दोनों शब्द एक ही अर्थ में है – बुद्धि में स्वीकृति के अर्थ में | वो दृढ हो गया, उसके पश्चात अनुभव होना बाकी रह गया। चारों भाग मन, वृत्ति, चित्त, बुद्धि एक लाईन (रेखा) में आ जाये

जिसे अपन संगीत कहते हैं, या उसे समन्वय कहते हैं, अथवा एकरुपता कहते हैं, उसके आ जाने से ध्यान होता है, यही बोध । बुद्धि पूर्वक ही ध्यान होता है | ध्यान के बाद अनुभूति है। वस्तु का ज्ञान हुआ रहता है, अवधारणा में|

जिज्ञासा: मनन करने का मतलब है- मन पूरे समय वस्तु में ही रमा है ?

उत्तर: अर्थ में ही जीना; <u>शब्द</u> की जगह वस्तु के <u>अर्थ</u> में ही जीना। जैसा शरीर के साथ जीते हैं। शरीर को जीवंत बनाकार रखते है। जीवंत बनाकार रखने के लिए जी रहा है। जीवंत क्यों बनाकार रखना? सत्य को प्रकाशित करने के लिए। यही चीज विगत के अध्यात्मवाद में नहीं कह पाए। ये conclusion (निष्कर्ष) दे नहीं पाए। भाषा कुछ भी हो, वो विगत के अध्यात्मवादियों ने इस बात को नहीं दे पाए ... अपन जो अर्थ दिये हैं- श्रवण, मनन, निदिध्यासन का; वो क्रमिक है। पहले जो बात हुई थी, विगत वांग्मय में, वो मान्यता थी। विगत में यह माना गया एक होने के पहले दूसरा नहीं हो सकता, क्रम को उसमें हमने स्पष्ट किया है.... ये नियतिक्रम से, निश्चित पध्दति से है – साक्षात्कार, निदिध्यासन में हमने क्रम को स्पष्ट कर दिया।

जिज्ञासा: आपने कहा कि साक्षात्कार मे जो वस्तु पहचाना वो बोध में और पक्का होता है। स्थिर होता है। उससे वस्तु में ‘अंर्तसंबंध’ स्पष्ट होता है?

उत्तर: अंर्तसंबंध क्या? विकास क्रम, विकास, जागृतिक्रम, जागृति का ज्ञान होता है | अध्ययन विधि से उसी का अनुभव होता है- जो पक्का होता है, बुध्दि में । अनुभव, अनुक्रम से होता है। अनुभव का मतलब ही है अनुक्रम से होना। अनुक्रम है: विकास क्रम, विकास, जागृतिक्रम, जागृति। सहअस्तित्व में ये पाँच सूत्र ही अनुभव का सार है। इसी क्रम से अनुभव होता है। सहअस्तित्व का मतलब सत्ता में संपूर्ण जड़ - चैतन्य प्रकृति संपृक्त, भीगे रहने से उर्जा संपन्नता, ज्ञान संपन्नता; चैतन्य प्रकृति में ज्ञान संपन्नता और जड़ प्रकृति में उर्जा संपन्नता ये दो ज्ञान है। इसके बाद विकास क्रम में रासायनिक-भौतिक संसार, विकास रुप में जीवन, जीवन दो प्रकार से- जीव चेतना विधि से और विकसित चेतना विधि से । जीव चेतना विधि से Practice (अभ्यास) हुआ है और विकसित चेतना विधि से Practice (अभ्यास) होना अभी शेष है । उतना ही तो कहा है।

वस्तु वास्तविकता को व्यक्त करता है। वास्तविकता "होने" और "रहने" के रूप में है। वस्तु "होने" और "रहने" के रूप में पहचान लेना ही साक्षात्कार है। अस्तित्व में कोई ऐसा भाग नहीं है जो "होने-रहने" के स्वरूप में न हो।

प्रत्येक एक अपने ढंग से क्रमिक रूप से जीवन में साक्षात्कार होता है। सत्ता में संपृक्त चारों अवस्थाएं जब पूरा साक्षात्कार हो जाता है तो अनुभव होता है। अनुभव सहअस्तित्व में, से, के लिए है। अध्ययन विधि में सम्पूर्ण सहअस्तित्व साक्षात्कार पूरा होने में जो समय लगना है, वह लगता है।

अनुभवगामी विधि से अवधारणा-बोध होने पर यह प्रतीत होता है कि "मैं प्रमाणित कर सकता हूँ"। अनुभव पूर्ण होने पर बुद्धि में जो अनुभव-प्रमाण बोध होता है - उसका नाम है, ऋतंभरा। सत्य को प्रमाणित करने की शक्ति (योग्यता) है ऋतंभरा। अनुभवमूलक विधि से ही ऋतंभरा आता है, उससे पहले आता नहीं है।

जिज्ञासा: समझदार प्रमाणित व्यक्ति यदि उपलब्ध नहीं है, तो अध्ययन हो नहीं सकता?

उत्तर: - अध्ययन करने का अधिकार हर व्यक्ति के पास रहता है, जीवन में। उसको क्रियान्वित करने के लिये, प्रेरणा पाने के लिये प्रमाणित व्यक्ति की आवश्यकता है | प्रमाणित व्यक्ति के बिना प्रेरणा कहाँ से होगा ?

हाँ, अध्ययन होता है, तदाकार होता है, इसपर (हमको) विश्वास यदी है, तो सीधे Literature (वांग्मय) से सीधे अध्ययन कर सकते हैं | जैसे लिखा गया उसको अनुभव के किये उसी भाषा का परिणाम के अनुसार स्वीकार करेंगे तो हो जायेगा | हमारे अनुभव की रोशनी पर यदि आपको विश्वास हुआ तब तो आपको उपलब्ध होगा| हमारे अनुभव की रोशनी पर आप विश्वास नहीं करेंगे, आपको यदी अपने अनुसार अनुभव होना है, ऐसे यदी तर्जुमा कर लेते हैं तब नहीं होगा|

इस दर्शन में दिया शब्द में जो अर्थ है, उसमे अनुभव का रोशनी है ये स्वीकार होने पर हो जायेगा | आप लोग जो शब्द बनाते है उसमें अनुभव का रोशनी को डालने की कोशिश करेंगे वो अनुभव होगा नहीं | इसीलिए हमारा बारम्बार इशारा है भाषा को बलदा न जाये | समझने के पहले ही आप लोग यदी पंडित बनने जाओगे तो बखेड़ा के अलावा दूसरा कुछ भी हाथ नहीं लगेगा ... समझाने के लिए यदी कोई नहीं है नहीं, तो क्या होगा पुछा ? पुस्तक पढने से जो समझ में आता है, उसका अनुकरण कर सकते हैं.. इससे से उपकार की शुरुआत है |

जिज्ञासा: जैसे मुझे मानवीयतापूर्ण आचरण का अध्ययन यदी करना है, तो यह किसी जीते हुए व्यक्ति के साथ ही संभव है ?

उत्तर: पठन अध्ययन नहीं है; शब्द के अर्थ में यथार्थ को समझा हुआ व्यक्ति का वचन होता है; शब्दों के अर्थ में अस्तित्व में वस्तु होता है। सहअस्तित्व रूप में होता है, उसका सुनना श्रवण हुआ। श्रवण, सूचना है। सूचना होने से यह होगा कि ‘यह सच्चाई है, इसको स्वीकारना है’ । यह सूचना से होता है, वो स्वयं में व्यक्त होता है। न्याय, धर्म, सत्य को यह स्वयं में तौलना बनता है, तब आभास हो गया। तुला हुआ विचार हो गया, वो प्रतीति हो गया तो बोध हो गया। अवधारणा के बाद अनुभव हो गया, प्रमाणित हो गया। समझना किस बात को - न्याय, धर्म, सत्य को। सत्य क्या है- सहअस्तित्व; न्याय क्या है- हमारा आचरण। तीन कोर्स बताया - तीनो कोर्स में जीना है यह धर्म है, यह सत्य है, यह न्याय है - सहअस्तित्व को स्वीकारना। परम सत्य उसी का नाम दिया। तीनों प्रकार से जीना ही धर्म है। व्यवहार में स्वधन, स्वनारी/स्वपुरुष, दयापूर्ण कार्यव्यवहार पूर्वक जीना ही न्याय है। न्याय रूप में जीने वाला, सत्य रूप में जीने वाला, समाधन रूप में जीने वाला व्यक्ति ही प्रमाणित है। यही निर्दोष व्यक्ति हो सकता है, है और उसको प्रमाणित करने के लिए एक

से अधिक व्यक्ति चाहिये। मानव ही उसको समझेगा, मानव ही इसको समझाएगा। एक से अधिक व्यक्ति के बिना समझना, जीना, कहाँ बनता है ? उस ढंग से सहअस्तित्व की शुरुआत है।

जिज्ञासा: जो अनुभव दर्शन का पहला वाक्य है- "अब ब्रह्म जिज्ञासा है। मैं और मेरा में निर्भ्रांति के संदर्भ में ... " क्या अवधारणा पूरा होने के बाद अनुभव के लिए यही बिन्दु बचा हुआ रहता है ? अर्थात इकाई और व्यापक वस्तु में, स्वयं और व्यापक में जो सम्बन्ध है, ये स्पष्ट होने के लिए, अनुभव की आवश्यकता रहती है... ?

उत्तर: यही अनुभव है !! प्रकृति व सत्ता का अविभाज्यता का अनुभव होना। ये विभजित हो नहीं सकता है, इस जगह में पहुँचना। इसी का नाम है स्व-स्वरूप ज्ञान | यह अनुभव में ही स्पष्ट होता है, इसके पहले स्पष्ट नहीं होता| अनुभव के पहले भाषा है, अनुभव के बाद प्रमाण होता है। प्रमाण क्या है- जीना है। जीना तीन स्वरुप में होता है। प्राण निकालने वाली चीज यही है ! अभी हर व्यक्ति अपने को तीस मारखाँ मानता ही है ... इस कसौटी में कहाँ खड़ा होता है, आप ही सोच लो !

जिज्ञासा: यदि क्रम से देखें - चित्रण में स्वयं प्रमाणिक होने की इच्छा के बिना तुलन नहीं होता । जब तक बुद्धि में स्वयं प्रमाणित होने का संकल्प नहीं होता, तब तक अनुभव नहीं होता।

उत्तर:- वही। अध्ययन की महिमा अपने जगह पर है, अध्ययन से अवधारणा चैनल (रास्ता) बना है; अवधारणा से अनुभव का चैनल बना है | अनुभव के बाद अध्ययन कराने का चैनल बना है। 'राउंड द विकेट' हो गया।

जिज्ञासा: क्या श्रवण, मनन, अवधारणा ये चक्रीय क्रम है, अवधारणा पूरा होने तक ?

उत्तर: अवधारणा नहीं, साक्षात्कार !!! अवधारणा एक ही साथ होगा। अध्ययन विविध आयामों से होता है। अध्ययन का सार अवधारणा में आता है। सार आने के बाद उस सार का अनुभव होता है। सार अवधारणा में, अध्ययन क्रम से आता है। अवधारणा एक ही moment (मुहूर्त) में होगा; तब तक अध्ययन है।

अनुभव विविध रूप में प्रसारित रहता है। उसको एकत्रित करना सार है। सार भाग संपूर्ण है। संपूर्ण ही सार है। संपूर्ण क्या है- सह अस्तित्व । सह अस्तित्व के लिए material (सामग्री) इकठ्ठा होता है अध्ययन से - सह अस्तित्व स्वीकार होने के लिए। स्वीकार होने के बाद उसका अनुभव, प्रमाण होता है।

जिज्ञासा: ये 'इकट्ठा' होना क्या है ?

उत्तर: ये अध्ययन है, इसके बाद अवधारणा।... सभी आयामों से हम communicate (संप्रेषित) कराते हैं। एक एक आयाम से। मानलो, 275 आयाम है- सब इकठ्ठा होकर एक बिन्दु बनता है ... सार बात। वो सार बात सह अस्तित्व है। सह अस्तित्व क्या है- सत्ता में संपृक्त प्रकृति। इसको चार आयामों से समझाया गया है अंत में। चार आयाम है- विकास क्रम, विकास, जागृति क्रम, जागृति के रूप में। सह अस्तित्व अविभाज्य है । इतने को समझाया गया है। समझने के बाद ये सार बात हो गया। ये सार बात स्वीकार होता है- ये हुआ मनन। मनन से निकल गए तो अवधारणा में पहुँच गए। श्रवण से मनन तक ही सारा झंझट है।

जिज्ञासा: बुद्धि में अवधारणा और बुद्धि में बोध होना, और बुद्धि में आत्म बोध होना में क्या अंतर है ?

उत्तर: सब एक ही अर्थ में है |

जिज्ञासा: आप अवधारणा उसको कह रहे हैं, जब (चित्त के चिंतन क्षेत्र में) साक्षात्कार पूरा होकर बुद्धि में स्टोर (जमा, स्थिर) हो गया?

उत्तर: हाँ।

जिज्ञासा: "बूँद-बूँद" की बात साक्षात्कार तक ही है?

उत्तर: हाँ, बूँद बूँद से घड़ा भरता है । स्वयं पर विश्वास कैसे होता है? समझदारी से होता है। क्या समझदारी- मानव चेतना, देव चेतना, दिव्य चेतना- ये हुआ समझदारी। जीव चेतना समझदारी नहीं है । जीव चेतना के साथ इसको (मध्यस्थ दर्शन को) प्रस्तुत करोगे; उसका निरर्थकता सिद्ध होगा। ये बात पहले से कह चुका हूँ ।

इसीलिए, जब तक हम स्वयं प्रमाणित नहीं हैं, तब तक साथ में source (स्त्रोत) को बताना चाहिए ....कहाँ से आया, किसका काम है – इसको कैसे छुपायेंगे? क्यों छुपायेंगे? यदी हमने स्त्रोत को छुपाया, अपना नाम आगे किया, उसका आचार्य हम हुए या नहीं ? अभी अपने शिविरों में व्यक्ति highlight (प्रकाशित) होने के जगह वस्तु highlight (प्रकाशित) होना है |

मानव चेतना, देव चेतना, दिव्य चेतना में अपन संपन्न होते हैं, पारंगत होते हैं; विकसित चेतना इसको नाम दिया। अनुभव से यही होता है | विकसित चेतना में पारंगत होने के उपरांत स्वयं का मूल्यांकन कर सकते हैं।

समाधान के अर्थ में ही स्वमूल्यांकन होगा। स्वमूल्यांकन का पहला आधार बनता है- हम जैसा सोचते है, वैसा बोलते हैं की नहीं; जैसा बोलता हूँ, वैसा करता या जीता हूँ कि नहीं; जैसा जीता हूँ, वैसा बोल पाता हूँ कि नहीं। यही चेक-बैलेंस प्रोग्राम है (स्वयं में खरे उतरने

का कार्यक्रम)। इस विधि से मूल्यांकन होगा। यदि बोलने में, करने में, जीने में, होने में - एकसूत्र में आ जाते हैं तो समाधान होगा या समस्या? इन चारों भागो में एक जगह में आना पड़ेगा, संतुलन यही है। एक व्यक्ति में संतुलन यही है। कायिक, वाचिक, मानसिक, कृत, कारित, अनुमोदित विधि से नौ प्रकार से जो हम काम करते प्रकारान्तर से - इनमें एकसूत्रता बन जाए तो हमारा स्वमूल्यांकन होता है। पहला मूल्यांकन यही है। उसके बाद समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व में हम जी पा रहे कि नहीं- दूसरा मूल्यांकन । तीसरा कसौटी- नियम, नियंत्रण, संतुलन, न्याय, धर्म, सत्य पूर्वक जीता हूँ कि नहीं । चौथा कसौटी- स्वधन, स्वनारी/पुरुष , दयापूर्ण कार्य व्यवहार पूर्वक जीता हूँ कि नहीं।

ये चार कसौटी हर व्यक्ति अपने ऊपर लगा सकता है। शिक्षा इसी के लिए है। स्मरण में आने वाले बात को पहले स्मरण में डालना; अनुभव में आने वाले बात को अंत में डालना। साधना में क्या होता है- अनुभव पहले, बाद में स्मरण। मेरे अनुभव का स्मरण में हम सारा बात प्रस्तुत कर रहे हैं। इसी प्रकार हर व्यक्ति सम होने के पश्चात स्मरण के आधार पर प्रस्तुतियां करता है। इसीलिये कहते हैं साधना विधि से अनुभव, अनुभव मूलक विधि से अभिव्यक्ति | जबकी, अध्ययन विधि से पहले अभिव्यक्ति उसके बाद अनुभव। जो (मेरे) अनुभव मूलक विधि से अभिव्यक्त है, उसका (आपका) अभिव्यक्त होने के उपरांत अनुभव मूलक विधि से (संसार में) प्रमाण।

अभी हम स्वयं समझे बिना पहले समझाने के लिए चले जाते हैं, जीव चेतना वालों को ज्ञान देने की लिये सोचते है इससे होगा नहीं | जीव चेतना वाला, जीव चेतना विधि से ही ज्ञान देगा| जाग्रति के अनुकरण विधि से करते है तो दूसरों को बताना भिन्न ध्वनी में होता है| अनुभव विधि से होता है, तो प्रमाण होता है|

जिज्ञासा: 'अनुकरण विधि' से बताने का मतलब सरलता रखना, बिना दिखावे के ...?

उत्तर: किसके जाग्रति के बात को हम बता रहे हैं, इसे रखना | reference (स्त्रोत, संदर्भ) को बनाये रखने से हमारा स्थिति को स्पष्टता से बताना बनता है ...

जिज्ञासा: 'अध्ययन बोध' और 'अनुभव' को समझना चाहते हैं...

उत्तर: अध्ययन भाषा में होता है, अनुभव (मात्र) अर्थ में होता है। अध्ययन, <u>भाषा</u> में शुरूवात होता है, अर्थ में अंत होता है । अर्थ में समझने की जगह में से, तदाकार होने की जगह में से जीवन शुरू होता है – अब शरीर छूट गया (साक्षात्कार से) । जो समाधि-संयम में होता है वो क्रिया हो गया । उसके बाद अनुभव तक पूरा का पूरा जीवन ही करता है ।उसके बाद पुनः चिंतन तक केवल जीवन रहता है, उसके बाद चित्रण आ गया, तो शरीर जुड गया । शरीर क्रिया का संबंध जागृति के बाद साढे चार क्रिया द्वारा ही है । जबकी जीवन में दसों क्रिया व्यक्त होता है - यही अंतर है, भ्रमित और जाग्रति अवस्था में |

साक्षात्कार से होता है, सच्चाई का अवधारणा | अवधारणा का मतलब अभ्यास से, के लिए प्राप्त स्वीकृतियां, इसका नाम है "अवधारणा" | अभ्यास काहे के लिए, अभ्यास अपनाने के लिए, अपना स्वत्व बनाने के लिए अभ्यास | जैसे झाड़ गाड़ते है, अपना स्वत्व बनाने के लिए एक अभ्यास, इसका नाम है 'कर्माभ्यास' | सर्वप्रथम शास्त्राभ्यास से श्रवण | इसके बाद वस्तु का साक्षात्कार करने के लिए ध्यान देना = 'साक्षात्कार का अभ्यास है', उसके अनुकूल जीने के लिए 'व्यवहाराभ्यास' | यह होने से मनन हुआ | यह होने से साक्षात्कार हो गया | अब 'व्यवहाराभ्यास' किस के लिए? – विशवास को प्रकट करने के लिए|

अभ्युदय के लिए अभ्यास | अभ्युदय क्या है - सर्वोतोमुखी समाधान को प्रमाणित करने के लिए अभ्यास | इन तीनों अभ्यास का आशय समझ में आ गया? इन तीनों के अर्थ में अवधारणा है | अभ्यास से, के लिए स्वीकृतियां = अवधारणा | अभ्युदय के लिए प्राप्त स्वीकृतियां = अवधारणा | विश्वास को जब देखते हैं, - पहले स्वयं में विश्वास, फिर सब के साथ विश्वास , पहले संबंधों के साथ विश्वास उसके बाद जहां हमारा सम्बन्ध नहीं है उनमें विश्वास | जैसा धरती तक हमारा सम्बन्ध है मट्टी से ले कर मानव तक सब के साथ सम्बन्ध है, उसमे विश्वास | स्वयं में विश्वास के बाद यह सब होता है | स्वयं में विश्वास नहीं है इसमें सम्बन्ध में विश्वास कर ही नहीं सकते | इसलिए सारा अपराध करते है | विश्वास के साथ अपराध होता नहीं , जिस के साथ विश्वास हो उसके साथ क्या अपराध कर पायेंगे ? जैसे एक पेढ में हम विश्वास रखते है, उस पेढ के साथ हम अत्याचार नहीं कर पाएंगे | स्वयं में यदि विश्वास होता है क्या हम अपराध कर पाएंगे? यह सब check balance program (जांच परक कार्यक्रम) के लिए यह मुद्दे बने है | यदि हम अपराध के लिए सामर्थ होते है तो हम स्वयं में विश्वास नहीं करते, स्वयं में विश्वास करने के बाद अपराध करते नहीं |

इसलिये अभ्यास जो है, अवधारणा के लिए बात बना | अवधारणा क्या है पूछा? - साक्षात्कार से प्राप्त स्वीकृति | साक्षात्कार क्या चीज़ है – शुभ के लिए | स्वयं में विश्वास करना शुभ है | स्वयं में विश्वास के लिए हमको जितना भी सूचना मिलती है, शब्द होता है, शब्द का अर्थ होता है, अर्थ के रूप में अस्तित्व में वस्तु होती है, 'वस्तु' को हम अपनी कल्पना में भर लेते है, वो होने से साक्षात्कार हुआ, इसका जो बुद्धि में स्वीकृति हो गया, उसका नाम है 'अवधारणा' |

अध्ययन-अभ्यास से हमारा मन-प्रवृति बदलने का रास्ता बनता है की नहीं बनता है देख लो | मन-प्रवृति का बदलना क्या? – 'अपराध' से 'न्याय' की ओर | "अपराध-प्रवृतियों" की ओर से "न्याय-प्रवृतियों" की ओर बदलना ही है | मन प्रवृतियों का बदलना जो है - गुणात्मक परिवर्तन यही है | साक्षात्कार की जगह आने से हम मानवीयता के पक्षधर हो गए | दुसरे विधि से – मानवीयता को स्वीकारे बिना, चाहत बिना साक्षात्कार होता ही नहीं | साक्षात्कार में आने से मानव चेतना का पता लगने लगता है | विकसित चेतना का ज्ञान होता | यही मानवीयता, विकसित चेतना रूप में अनुभव में जाकर पूरा हो जाता है – उसके मानवीयतापूर्ण नाम दिया है | अनुभव ओने से मानव का स्वभाव आ जाता है, उसमे दया, कृपा, करुणा आ जाता है अनुभव-मूलक विधि से जीने के स्वरूप का नाम है - "मानव चेतना" । अनुभव में तीनो चेतना का ज्ञान समाया रहता है | अनुभव के बाद मानवत्व स्वरूप में जीना बन ही जाता है। मानवत्व स्वरूप में जीने का मॉडल है - समाधान-समृद्धि। मानव-चेतना पूर्वक जीना शुरू करते हैं, तो अखंड-समाज और सार्वभौम-व्यवस्था की सूत्र-व्याख्या होने लगती है। इस तरह "उपकार" करने का अधिकार आ जाता है। | क्रम तो ऐसा ही है | न्याय क्या है – संबंधों को

पहचानना, मूल्यों को निर्वाह करना, उभय तृप्ति पाना, संतुलन पाना | मनुष्य का प्रकृति के साथ संतुलन पाना, मानव के साथ संतुष्टि पाना परस्पर | इससे अच्छा क्या होगा?

:: बोध – अनुभव ::

जिज्ञासा: अवधारणा पूरा होने पर ही अनुभव होता है ?

उत्तर: अवधारणा के बाद बोध आत्म बोध होना, अनुभव होना, प्रमाण होना, स्वाभाविक होता है|

इस ढंग से अध्ययन विधि से पहले अवधारणा पूरा हुआ| वो धारणा में परिवर्तित होने के लिए अनुभव मूलक विधि से लाते है हम 'प्रमाण', तब पूरा हुआ, तब धारणा हुआ | धारणा होने के बाद पूर्ण हुआ | अध्ययन पूर्ण होने का प्रमाण हो गया | उसी का नाम है 'समझ' | धारणा पूरा होने के बाद अध्ययन पूरा हुआ | यदि धारणा पूरा नहीं हुआ है तब तक अध्ययन करना ही होगा| ठीक हो गया? अनुभव के पहले हम समझ गए मान सकते हैं, समाधान हो गया मान सकते हैं, किन्तु ऐसा रहता नही | अनुभव के पूर्व में प्रत्येक व्यवहार और कार्य में त्रुटी रहता है |

जिज्ञासा: आपने कहा है: पारगमीयता' के बिन्दु को छोड़ कर, बाकी सब अवधारणा में आ जाता है ?

उत्तर: अवधारणा के बाद, केवल पारगमीयता छूटा रहता है - अनुभव के लिए | पारगामीयता आने से हमारे में दूसरे को समझने का ताकत आ गया । अभी दुसरे को समझना कहाँ बनता है? दूसरे को न समझना से अपने को ही विद्वान मानना बनता है | इतना ही बात है।

जिज्ञासा: 'मध्यस्थ क्रिया' का जो बोध है उसे १९७८ और २००३ के व्यवहार दर्शन में आपने लिखा है- "आत्म बोध तथा सत्य बोध ही आध्यात्मिक उपलब्धि है। अर्थात् सहअस्तित्व में व्यापक वस्तु में जीवन बोध ही आध्यात्मिक उपलब्धि है। अंतर्नियामन प्रक्रिया द्वारा ही आत्म बोध होता है जो ध्यान की चरम उपलब्धि है | यह ही पूर्ण विकास है | यही जागृति है | ऐसे आत्म बोध से पूर्ण, विकसित इकाई को 'पूर्ण चैतन्य' की संज्ञा है तथा इन्हीं ही देवता की संज्ञा है |

उत्तर: वही है | आत्म बोध होने से आत्मा को पहचानने की बात आती है | उसके पहले बुद्धि ही अहंकार रूप में रहता है | आत्म बोध होने से ही व्यापक वस्तु का, सत्य ज्ञान हमको होता है | यह कब होता है ? बुद्धि में ऐसे आत्म बोध होने की जब तय्यारी हो जाती है, तब | इसी का नाम जागृति कहा |

जिज्ञासा: इसके बाद आप लिखते हैं: आत्मा के ओर बुद्धि का परावर्तन होते ही आत्म बोध तथा आत्मा सहअस्तित्व में परावर्तित होते ही ब्रह्मानुभूति (व्यापक सत्ता की अनुभूति) एक साथ ही प्रभावशील होता है | प्रभावित हो जाना ही उपलब्धि है | ऐसे उपलब्धि का हो जाना ही बुद्धि को आप्लावित किये रहता है | ऐसे ब्रह्मानुभूत इकाई को दिव्य मानव संज्ञा है, जो सतत प्रेरणा का श्रोत हैं तथा देवता भी जिनसे मार्गदर्शन की अपेक्षा रखते हैं |

उत्तर:- इतना ही है - आत्मा सहअस्तित्व में प्रत्यावर्तन; बुद्धि आत्मा में प्रत्यावर्तन। ये हो जाता है, तदाकार हो जाता है, वही तदरूप है। तद्रूप आत्मा में, तदाकार बुद्धि में; उससे पहले मनन, श्रवण पूर्वक – चित्त, वृत्ति, मन में कल्पनाशीलता तदाकार होता है । ऐसा तो लाइन अप (रेखाकार) बना है ! अनुभव में सारा ज्ञान समाया है, उसी को लिखा है |

जिज्ञासा: तो अनुभव के पहले अध्ययन विधि से बुद्धि में पहले अवधारणा है, उसके बाद बुद्धि में आत्म-बोध है, फिर अनुभव, उसके पश्चात पुन्ह: अनुभव बोध है।

उत्तर:- प्रमाण बोध है।

जिज्ञासा: क्या अनुभव में ही 'संपृक्तता' का बिंदु समझ में आता है ?

उत्तर: अनुभव में ही आता है | बुध्दि में जो बोध होता है, उसका अनुभव होता ही है, फिर कहना अनुभव ही प्रमाण है | अनुभव प्रमाण क्या है, सर्व देश, सर्व काल के लिए हो जाता है | अनुभव होने से क्या हो गया? सर्वदेश, सर्वकाल के लिए उपलब्धि हो गये - सार्वभौमिक, सार्वकालिक | अभी अपन किस देश में किस काल में रुकते है? रुकने की जगह है इसमें?

Goal (लक्ष्य) वही है| 'अवधारणा' और 'धारणा' | अवधारणा और धारणा के बीच में हमारा पुरुषार्थ कुछ नहीं है, अपने आप से होता है – अनुभव | धारणा के बाद पुरुषार्थ हमको करना है| क्या करना है? प्रमाणित करना है – इसका अभ्यास होता है | चिंतन का, व्यवहार का, कर्म का अभ्यास | ये अनुभव के बाद, अपने से आप से आता है | पहले कैसे है? <u>हमको</u> करना है | सत्य बोध में क्या तीन factor (घटक) दिए है| स्थिति सत्य, वस्तु स्थिति सत्य, वस्तुगत सत्य , इसका बोध होना | बोध काहे के लिए होना? सुख के लिए, सुखी होने के लिए बोध होना और किसी कारण के लिए नहीं |

संपूर्ण समाधान के अवधारणा हो जाने के बाद, अनुभव होना स्वाभाविक है| अनुभव के लिए कोई उपदेश नहीं है| अनुभव के लिए कोई पुरुषार्थ नहीं है, अनुभव स्वाभविक जीवन सहज प्रक्रिया है , बोध होने के बाद अनुभव होता ही है| अवधारणा बोध होना पुरुषार्थ ,

पुरुषार्थ क्या है अध्ययन है, अध्ययन में क्या है तदाकार है , तदाकार के लिए क्या चीज़ है - वस्तु? अस्तित्व में सहअस्तित्व रूप में और मानव के पास कल्पनाशीलता है | कल्पनाशीलता के साथ ही तदाकार होता है| सत्य के साथ तदाकार होना | तदाकार हो गया, तो हो गया .. अवधारणा हो गया | यदि तदाकार नहीं हो पाया, अध्ययन नहीं हुआ, अध्ययन करो – सीताराम !!

जिज्ञासा: अध्ययन-बोध या अनुभव-गामी बोध और अनुभव-प्रमाण बोध या अनुभव-मूलक बोध में क्या अंतर है?

उत्तर: अध्ययन पूर्वक शब्द से अर्थ और अर्थ से वस्तु तक पहुंचना बनता है। अध्ययन पूर्वक सच्चाइयों का जो बोध हुआ था - अनुभव में उसकी स्वीकृति हो जाती है। अनुभव में इस प्रकार स्वीकृति होने पर प्रामाणिकता आ गयी। जिसके फल-स्वरूप बुद्धि में प्रमाण-बोध होता है। जिसको प्रमाणित करने के लिए बुद्धि, चित्त, वृत्ति, मन सब काम करने लगते हैं।

बुद्धि का वर्चस्व या मौलिकता बोध ही है। चित्त का वर्चस्व चिंतन ही है। वृत्ति का वर्चस्व न्याय-धर्म-सत्य के आधार पर तुलन ही है। मन का वर्चस्व मूल्यों का आस्वादन करना ही है। इस ढंग से पूरा जीवन "अनुभव-मय" हो जाता है। अध्ययन विधि से अनुभव में स्वीकृति तक पहुँचते हैं, अनुभव मूलक विधि से प्रमाणित होने तक पहुँचते हैं। हमने जो अध्ययन कराया – उसको आप प्रमाणित करना।

प्रमाणित होने की शुरुआत अनुभव-मूलक चिंतन से है। उससे पहले दृष्टापद है। अनुभव पूर्वक मनुष्य दृष्टा पद में हो जाता है। प्रमाणित होने, जीने, में परंपरा के रूप में ही होता है। अनुभव तभी होता है जब बोध या अवधारणा सही हुआ हो। "सही" के अलावा कुछ बोध होता भी नहीं है। "सही" के अलावा दूसरा कुछ भी मनुष्य के आगे आता है, उसको तर्क फंसा ही लेता है। जब तक "सही-पन" का प्रस्ताव मनुष्य के आगे नहीं आता तब तक तर्क उसे अपने चंगुल में फंसाए ही रखता है। "सहीपन" तर्क के चंगुल में आता नहीं है। तभी सही-पन का बोध होता है। सह-अस्तित्व स्वरूप में ‘अस्तित्व-बोध’ बुद्धि में होता है। सह-अस्तित्व परम-सत्य है - इसीलिये अनुभव होता है। सह-अस्तित्व बोध होने के बाद ही सह-अस्तित्व में अनुभव होता है। मैं जो साधना-समाधि-संयम पूर्वक चला - उसमें भी सह-अस्तित्व बोध होने के बाद ही मुझे अनुभव हुआ।

अध्ययन पूरा होने पर ही अनुभव होता है। अध्ययन की वस्तु सम्पूर्ण सह-अस्तित्व ही है। अध्ययन यदि पूरा होता है तो बुद्धि में प्रमाणित करने के संकल्प के साथ तुरंत (आत्मा मैं) अनुभव होता है। अनुभव पूर्वक ही प्रमाणित करने का प्यास तत्काल बुझता है। अध्ययन पूरा होने की स्थिति अवधारणा में प्रमाणित होने की तत्परता बनता है। यदि आत्मा में अनुभव होता है, तो हम स्वयम को प्रमाणित करने के योग्य हो गए। अनुभव-मूलक विधि से ही प्रमाण होता है। दूसरा कोई प्रमाण होता नहीं है।

अनुभव-मूलक विधि से प्रमाण ही होता है। दूसरा कुछ होता नहीं है। अनुभव ही अंतिम प्रमाण है। अनुभव के बिना प्रमाणित होने का हैसियत तो आएगा नहीं! अनुभव के प्रकाशन का स्वरूप है - न्याय, धर्म, सत्य। आखिरी बात यही आती है - "जीने देना है, और जीना है। होने देना है, होते ही रहना है।"

इसमें क्या तर्क करोगे - बताओ? हर जीवन न्याय-धर्म-सत्य को चाहता ही है। जन्म से ही बच्चे न्याय के याचक होते हैं, सही कार्य-व्यव्हार करना चाहते हैं, और सत्य वक्ता होते हैं। हर बच्चा न्याय का याचक है - उसमें न्याय-प्रदायी क्षमता को स्थापित करने की आवश्यकता है। हर बच्चा सही कार्य-व्यव्हार करना चाहता है - उसमें कर्म और व्यव्हार के अभ्यास कराने की आवश्यकता है। हर बच्चा सत्य-वक्ता है - उसमें सत्य-बोध कराने की आवश्यकता है।

प्रमाणित होने की "प्रवृत्ति" मनुष्य में है ही! प्रमाणित होने की "आवश्यकता" मनुष्य में है ही! लेकिन प्रमाणित होने के लिए "वास्तविकताओं की समझ" मनुष्य में अभी तक नहीं थी, वह स्पष्ट करने के लिए ही मध्यस्थ-दर्शन का अध्ययन है।

जब तक अनुभव नहीं है, तब तक तर्क का झंझट बना ही रहता है। ऐसा तर्क "निश्चयन विधि" से जीने के लिए बाधक है। निश्चयन विधि से जीने के लिए अनुभव ही है। सह-अस्तित्व स्थिर है, विकास और जागृति निश्चित है। इन तीन बातों को ही जीने में प्रमाणित किया जाता है। इन तीन बातों को समझाने के लिए ही पूरा दर्शन, वाद, शास्त्र लिखा है। पूरा वांग्मय संक्षिप्त होने पर पांच सूत्रों में सूत्रित होता है - सह-अस्तित्व, सह-अस्तित्व में विकास-क्रम, सह-अस्तित्व में विकास, सह-अस्तित्व में जागृति-क्रम, और सह-अस्तित्व में जागृति।

अनुभव मूलक विधि से जीने की प्रक्रिया है - अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, और प्रकाशन। इन तीन तरीकों से मनुष्य अपने अनुभव को जीने में प्रस्तुत करता है। प्रकाशन अनुभव की ज्यादा व्याख्या है। सम्प्रेष्णा में सीमित-व्याख्या है। अभिव्यक्ति में संक्षिप्त-व्याख्या है। सामने व्यक्ति के अधिकार के अनुसार व्याख्या होती है। अध्ययन का लक्ष्य है - विस्तार से संक्षिप्त की ओर बढ़ना। स्वयं प्रमाण स्वरूप हो जाना। इससे ज्यादा कुछ होता नहीं है। इससे ज्यादा की कल्पना भी नहीं की जा सकती। कल्पना के आधार पर ही मनुष्य ज्ञान-संपन्न होता है। नियम-नियंत्रण-संतुलन-न्याय-धर्म-सत्य - ये ६ आयामों में ही मनुष्य के प्रमाणित होने की सीमा है। इससे ज्यादा नहीं है।

आप इस बात को पूरा समझ कर मेरे बराबर अच्छा जियोगे, या मुझसे ज्यादा अच्छा जियोगे! आपकी कल्पनाशीलता और कर्म-स्वतंत्रता इस समझ से जुड़ेगा तो आप हमसे अच्छे हो ही गए! इससे पहले न भौतिकवाद ऐसे सोच पाया, न आदर्शवाद ऐसे सोच पाया। भौतिकवाद का मृत्यु reservation (intellectual property right) (आरक्षण, ज्ञान पर अधिकार) और specialization (विशेषज्ञता) में हुआ। आदर्शवाद रहस्य में जा कर फंस गया। इन दोनों के विकल्प में मध्यस्थ-दर्शन प्रस्तुत हुआ है।

:: अध्ययन में बाधा ::

जिज्ञासा: अभ्यास अध्ययन में हमारा पूर्व स्मृतियाँ, इच्छाएं, अडचन करती हैं ...

उत्तर: वही रुकने का कारण है !! अभी आप पहले से जो सुने हो, सोचे हो, कीये हो, जीए हो, इसका पूर्व स्मृतियाँ, पूर्वाभ्यास इसमें अडचन करता है, इसी में समय व्यतीत होता है | क्या है बेटा, आप अभी के संसार में जो है, उसके किसी भाग को सही मानते हो, इसीलिए उसमे लटका रहता है...हमारे साथ जो है ना, हमने प्रचलित जीना को सर्वथा नकार दिया ... इसीलिए हम पार पा गए | अभी के जीने में कुछ भी ठीक नहीं है... इसको हम वरीय मान लेते हैं, वही शरीर के आधार पर, उसमे समय लगता है|

जिज्ञासा: अभी के सुख के स्रोत: चाहे पाँचों इन्द्रियों द्वारा आस्वादन हो, या रहन-सहन हो, मनोरंजन हो, सुविधाएं हो, यह सब चले जायेंगे, इनसे सुख समाप्त हो जायेगा, इसका भय रहता है, यह भी इसमें आड़े आता है | अर्थात, 'अध्ययन' के लक्ष्य के साथ, अनेक लक्ष्य, उनके उप लक्ष्य, कार्यक्रम बने रहते हैं ...

उत्तर: वो भी भय रहता है | ईसके लिए सूत्र दिया: गुरु मूल्य में लघु मूल्य समाता है | 'करना' – 'नहीं करना', यह मूढ़ बुद्धि की कथा है | 'होना क्या चाहिए' – इस विधी से पार पाते हैं |

... इसीलिए, उसे थोडा समय के लिए नीचे रखा जाय...भाई, तुमको थोड़ी देर बाद देखेंगे .... ये (नया: न्याय-धर्म-सत्य) उससे (पुराना: प्रिय-हित-लाभ) से वरीय है, श्रेष्ठ है, यह समझ मी आने से, स्वीकार होने से हो जाता है |

अभी इसके (ज्ञान) के लिए primacy (प्राथमिकता) दुसरे, तीसरे, चौथे किसी स्थान पर रहता है, इसीलिए समय लगता है | इसके लिए प्राथमिकता होने से समय बचता है |

जिज्ञासा: अभी अध्ययन के साथ साथ हमारा 'लोकव्यापीकरण कार्यक्रम' प्रभावी ओ जाता है...

उत्तर: अपने को पहले समझना चाहिए, उसके बाद समझाना चाहिए। (दूसरों को) समझाने के लिए हम कितना भी बात करें, बात ही हो जाता है। (स्वयं) समझने के लिए प्रयत्न करते है, उससे कम बात होता है। पहले समझा जाए, बाद में समझाया जाए। अभी इस वार्तालाप में दोनों साथ-साथ चल रहा है आपके साथ। उदेश्य की जगह दोनों बना है - इसीलिए ये मुद्दा उठता है। आदर्शवाद, भौतिक वाद दोनों में यही है, (दूसरों को) समझाने के लिए सब कुछ है, (स्वयं) समझने के लिए कुछ नहीं।

जिज्ञासा: जब मैं समझ रहा हूँ, उस समय (दूसरों को) समझने पर ध्यान जाते रहता है ।

उत्तर: अध्ययन या समझना ज्ञान में अनुभव करने के लिए एक synchronization process (समकालीकरण प्रक्रिया) है । ज्ञान को अभिव्यक्त करना एक expansion process है (विस्तारीकरण प्रक्रिया) । समझते समय "इसको अभिव्यक्त कैसे करेंगे",

इसमें आपका ध्यान रहता है तो आप कभी समझ नहीं पाएंगे। जब समझ रहे हो, उस समय (स्वयं) समझने पर ध्यान दो, न कि इसको दूसरों को इसे कैसे बताना है उस पर । अध्यवसायिक विधि में रुकावट वहीं है ।

समझने के लिए ध्यान देना होता है । समझने के बाद ध्यान बना रहता है । अध्ययन के लिए मन लगाते हैं तभी समझ में आता है ।

जिज्ञासा: अध्ययन पूर्वक हम अनुभव की ओर अग्रसर हो रहे हैं या नहीं - इसकी जाँच का क्या मापदंड है?

उत्तर: अध्ययन करते हैं तो समझ में आ रहा है। समझ में आ रहा है तो आप मे विश्वास हो रहा है। विश्वास हो रहा है तो और समझ में आ रहा है। इस तरह पूरा समझ में आने के बाद प्रमाणित होता है।

जिज्ञासा: बहुत सारे अंतर्विरोधों में जो मैं पहले रहता था, अब वे मुझमे नहीं दिखते। अभी मुझे अनुभव तो नहीं हुआ है, पर इसको मैं "उपलब्धि" के रूप में देखूँ या नहीं?

उत्तर: वह उपलब्धि कैसे हुआ? इस विकल्प के अध्ययन पूर्वक हुआ या आपके पूर्व विचार के आधार पर हुआ? विकल्प के अध्ययन पूर्वक हुआ तो उसे उपलब्धि के रूप में देखें, किन्तु वहाँ रुकें नहीं। (अनुभव मूलक) प्रमाणित होने तक नहीं रुकना। प्रमाणित नहीं होता है तो आपकी उपलब्धि आप तक ही है। वह व्यक्तिवाद है। अनुभव पूर्वक प्रमाणित होने पर आप संसार के लिए उपकारी होंगे।

जिज्ञासा: यदि ये माना जाये की जिज्ञासा की तीव्रता से साक्षात्कार होता है, तो यदि तीव्रता है जिज्ञासा की, तो क्या बिना मध्यस्थ दर्शन के अध्ययन करे साक्षात्कार हो सकता है?

उत्तर: , अध्ययन का शुरुआत है, पठन से | कब तक पढना है पुछा ? समझने तक | चाहे पांच बार पुस्तकों को पढ़ लो, चाहे ५० – समझने तक पढना है | बिना अध्ययन के कोई सच्चाई नहीं आएगा | दूसरा विधि है - अनुसंधान विधि | अनुसंधान के लिये समाधी संयम करना पड़ेगा | अब समाधी में तो कुछ ज्ञान होगा नहीं - यह मान लिजीये आप | उद्देश्य यदि ठीक है, आपकी जिज्ञासा यदि ठीक है और सह अस्तित्व विधि से ठीक है तब आपको समाधी संयम से ज्ञान होगा | पत्तनजल योग सूत्र में जो जिस बात का 'संयम' बताया है उसका उल्टा करने से ही ज्ञान होगा | दूसरा विधि से होगा नहीं | उसको हम करके देखा है |

सुनने, सुनाने की विधि से एक उपदेश नाम की चीज़ आती है | सुनने सुनाने में हमारा कल्पनाशीलता तदाकार होता है, परन्तु हम स्वयं प्रमाणित नहीं हो सकते | इसको अपने युवावस्था में हमने देख लिया ... उसी स्थिति में हमने संसार में जो उपदेश दिया, उपदेश देने के बाद हम अपने में जब जाँचा – 'क्या जो उपदेश दे रहा हूँ उसमें जी रहा हूँ ?' | तब हम अपने आप को जीता हुआ नहीं पाया तब व्यथित हुआ की 'संसार के साथ धोका कर रहा हूँ' | उस व्यथा को शमन करने के लिए हम यह सब काम (साधना) किये |

यह काम (साधना) करने पर और एक जगह में पहुँच गए की 'समाधी में कोई ज्ञान नहीं' हुआ| हमारा आशा-विचार-इच्छा चुप हो गए, इसका मैं द्दष्टा बना रहा | 'चुप' होने को हमने कोई ज्ञान माना नहीं | हाँ, 'मैं हूँ' इसका बोध, इसका स्वीकृति समाधी में बना रहा – हम मर नहीं सकता हूँ, यह बात इससे आ गयी | और कोई 'भरा सा वस्तु है', यह भी था | जैसे जल में डुबकी लगाने से आँखे खोलने से सूरज जैसे दिखता है, वैसे दिखते रहा ... इस अवस्था में देश, काल, शरीर का हमको कोई बोध नहीं रहा | परन्तु मैं स्वयं क्या हूँ, कैसे हूँ, अस्तित्व क्यों हैं, कैसे है, मानव का प्रायोजन क्या है, यह सब संयम से हमको ज्ञान हुआ | यह ज्ञान समाधी में नहीं हुआ | वही हमने अनुसन्धान में लिखा है तीन बिंदु : गठनपूर्णता, क्रियापूर्णता, आचरणपूर्णता | समाधी से जो हुआ हमको, भूत काल की पीड़ा, वर्तमान से विरोध, भविष्य के चिंता से हम मुक्त हो गए | समाधी से शरीर अध्यास आने के बाद यह चीज बनी रही | हमारे पास कुछ हैं, हमको कुछ चाहिए, कुछ करना है – यह तीनों समाप्त हो गया – समाधी में | संयम से उनका प्रायोजन निकल आया - है, चाहिए, करना है का |

इस ढंग से हमारा 'उपदेश विधि' स्व-निरिक्षण से छूट गया | साधना से पहले जब हम उपदेश देते रहे, स्व-निरिक्षण की इतनी ही बात थी की हम enquiry (जांच) करते रहे – की हमने ठीक कहा की ग़लत कहा, हम समझे की नहीं समझा, समझ के कर रहा हूँ, की जीके कर रहा हूँ, की मात्र दूसरे लोगो के लिए कह रहा हूँ ? यह निकला की "लोगों के लिए कह रहा हूँ" - तो इससे हम व्यथित हुए | और कितने लोग ऐसे व्यथित होते हैं, आप ही सोच लो, गणना कर लो | जिज्ञासा पैदा होने की जगह यही है - स्वनिरिक्षण से ही होता है मेरे अनुसार |

अनुभव शिविर, जनवरी २०१३, अमरकंटक

जिज्ञासा: इस विकल्पात्मक दर्शन द्वारा प्रस्तावित सभी बिंदुओं पर मुझे विश्वास है, इसके बावजूद "जीने" की जगह में मुझे स्वयं में कमी दिखती है। इसका क्या कारण है?

उत्तर: इसका कारण है आपका "पूर्वाभ्यास"। जो भी हम पहले कल्पना किये हैं या अभ्यास किये हैं, उसका स्मरण ही अवरोध है। ऐसे में मानवीयता में विश्वास होते हुए अमानवीयता में जीते हैं। मानवीयता की अपेक्षा जीवन के अनुसार है। अमानवीयता में जीना अभी की परंपरा है। ऐसे सोच के देखिये। यह स्थिति समाधान होने तक है। यदि समाधान होता है तो वह जीने में आता ही है।

::अध्ययन के लिए प्राथमिकता ::

जिज्ञासा: तीव्र इच्छा और जिज्ञासा में क्या अंतर है? क्या तीव्र इच्छा चित्रण ही है ?

उत्तर: तीव्र इच्छा और जिज्ञासा दोनों एक है | तीव्र इच्छा का मतलब हम जो सुन रहे हैं उसको हम अपना सूत्र बनाना , ये जिज्ञासा है | तीव्र इच्छा वरीय चित्रण हुआ | श्रेष्ठता को स्वीकारा, फलस्वरूप उसके पीछे लग जातें है

जिज्ञासा: यदी मैंने बहुत बड़ा सा प्लान (योजना) बना लिया, तीस वर्ष का, की 'ऐसा करना है', 'वैसे करना है'| वह 'करने' की दृष्टि में ज्यादा फैलता है ...

उत्तर: उसमे समझने की बात zero (शून्य) हो गया | समझाने में, 'करने' की बात में लग गए हम, उसमे समझने की बात तो dummy (पुतला, शून्य) हो गया | Planning (योजना) कब होना चाहिए? अनुभव के बाद होना चाहिए | पहले से हम planning बना लेते हैं, planning में अपना भड़ास मिला ही है | अनुभव तक तो केवल अध्ययन ही है, अध्ययन ही कर रहे है | अनुभव तक जो भी करते हैं, सभी अध्ययन के अर्थ में ही है | अभ्यास भी वही है | जीना भी वही है – सब समझने के अर्थ में है बोध तक अध्ययन है |– उसके बाद अनुभव है |

जिज्ञासा: पर अध्ययन काल में हमारा रोज़ का दिनचर्या में जैसे मैं भी श्रम करूँ तो यह अध्ययन के लिए सहायक नहीं है ?

उत्तर: सहायक काहे के लिए !! यह शरीर के लिए सहायक हुआ |

जिज्ञासा: 'अध्ययन' का यह भी मतलब नहीं है कि मैं पुस्तक लेकर कमरे में बंद हो जाऊं ... मानव व्यवहार दर्शन लेकर और एक साल बाद निकलूं ?

उत्तर: ऐसा नहीं होता | समझना होता है, समझने की जगह में व्यवसाय नहीं है, उत्पादन नहीं है |

जिज्ञासा: पर हम दिन भर समझते ही रहेंगे ऐसा तो कुछ नहीं है | कुछ व्यव्साय तो करेंगे ही व्यवहार , भी करेंगे |

उत्तर: ठीक है ना | समझने के पक्ष वरीय रहे है, क्रिया (कार्य) पक्ष कम रहे |

जिज्ञासा: आप यह कह रहे है की केवल ये "कार्यक्रम" ना बनकर रह जाये | "समझना है" ये वरीय रहे |

उत्तर: ठीक है, वरीय रहे| समझने की बात वरीयता में रहे इतनी ही बात है , इसको बनाये रखा जा सकता है | इसको हमने बना के रखा | तभी हम यहाँ (अनुभव) तक पहुँच पाए|

जिज्ञासा: बाबा जैसे आप साधना काल में दिन में बारह घंटे ध्यान दे पाते थे | मेरे से बारह घंटे नहीं हो पाता |

उत्तर: अध्ययन में बारह घंटे की ज़रुरत भी नहीं है | उसमे जो है ना दो घंटा, एक घंटा अध्ययन करें, एक मिनिट करें, किन्तु समझने के पक्ष में करें |

जिज्ञासा: उतना सघन रूप में ध्यान हमारा जाता नहीं.... साक्षात्कार के लिए अभ्यास में ?

उत्तर: वही समझने का पक्ष है | साक्षात्कार के लिए हम जो ध्यान देते हैं, वही अध्ययन है साक्षात्कार हुआ तो अध्ययन हुआ , | इसमें हमारा करने की पक्ष कितना घुला रहता है उसको सोचना पड़ेगा | इसी को शोध करना है | 'समझने' की पक्ष,'कार्य' पक्ष - इन दोनों में से कितना proportion (अनुपात) कार्य पक्ष में involve (भागीदार) हुआ | हमारा अध्ययन में, और ज्ञान पक्ष में कितना involve हुआ उसी का शोध करना है | ज्ञान पक्ष को वरीय बनाना है | बनाने के लिए ज्ञान पक्ष वरीयता के रूप में पहचानने के लिए यही करना पड़ेगा सबको !! करना है की नहीं करना है ? ज्ञान में ही मन को, विचार को, इच्छा को लगाये रखना ... वही homework (अभ्यास) है | गुणात्मक परिवर्तन को पाने की बात है | देखिये, इसमें गुणात्मक परिवर्तन की कथा है मानव में | क्योंकि मानव में जीवन और शरीर का संयुक्त प्रगटन है| और जीवन में जो है ना गुणात्मक परिवर्तन होने की बात है | उसमे अपन (जीवन में गुणात्मक परिवर्तन में) फंसते नहीं है | ज्ञान हो गया तो क्या करेंगे उसमें फंस जाते है ....

जिज्ञासा: इसका मतलब ज्ञान ही कार्यक्रम है | क्या ज्ञान होने के लिए व्यवहार सहयोगी है, उसके बाद उसी अर्थ में कार्य भी ?

उत्तर: ज्ञान के बाद second portion (दुसरे स्थिति) में व्यवहार, व्यवहार में न्याय, उसके बाद तीसरे जगह में उत्पादन, उसके बाद उपयोग, समाज व्यवस्था में भागीदारी, सब | priority (प्राथमिकता) तो ऐसे ही बनता है | इसे यदि उल्टा कर दिया, ज्ञान यदी नीचे चला गया, तो हरिहर हो गया| अभी आप लोगों के सामने मूल मुद्दा यही है – हमको भाषा से ही संतुष्ट होना की ज्ञान से ? ज्ञान, भाषा नहीं है | अभी मानव अपने भाषा, तर्क, बोलने को ही ज्ञान मान लेता है | चार आदमी ताली बजा दिया, हो गया, ऐसा सोचने से रुकने की जगह बनती है |

जिज्ञासा: बाबाजी, आप कई बार हम लोगों को 'उपकार' करने बोलते हो ...

उत्तर: उपकार क्या ? समझे हुए को समझाना, कीये हुए को कराना, सीखे हुए को सिखाना ..परम्परा इसी विधि से प्रवाहित होता है | इसमें जो है ना, पहले (स्वयं) समझना पड़ेगा, तभी तो (दूसरों को) समझा पाएंगे ? उसके पहले ही अपन बोलने के लोए दौड़ लेते हैं, गुड-गोबर होगा या नहीं ?

जिज्ञासा: 'दूसरों को बताना' फिर हम लोग एक 'अभ्यास' के रूप में करें ?

उत्तर: वो ठीक है | इसमें अपना परीक्षण होता है ...थोडा ज्यादा बोल दिया, थोडा कम बोल दिया, यह सब होता है | reference (स्त्रोत) के साथ यदी हम प्रस्तुत होते हैं, तो ठीक है | reference (स्त्रोत) को हटा दिया, उसके आचार्य हम हुए या नहीं ? यहीं से अहमता पनपता है | हम पढ़ा हूँ, हम समझा हूँ, हम प्रमाणित हूँ – यह तीन ध्वनी में आपका प्रस्तुति हो सकता है | यदी हम समझ भी लिए, किस्से समझा, कैसे समझा, यह प्रश्न आएगा उसमे...

जिज्ञासा: अध्ययन करते समय 'वस्तु' चाहते हुए भी हमारे में अनेक प्राथमिकताएं बनी हुई हैं ... इसका मतलब हमारे में वस्तु का प्राथमिकता "'सूक्ष्म'" अथवा "कारण" (प्रेरित) भेद से है, "तीव्र" नहीं है ...

उत्तर: इससे कहीं न कहीं हम खो जाते हैं , कहीं न कहीं अपने को दफना लेते हैं | ये क्या होता है, जो सच्चाई पक्ष को अपन चाहते हैं ,संपर्क में आ चुके हैं , उसमे निष्ठा भी है | उसके बावजूद कई बार खो जाते हैं ,कैसा खोते हैं, priority (प्राथमिकता) नहीं है, first primacy (प्रथम प्राथमिकता) नहीं है ,इसी से जजमेंट (फैसला) आता है | first primacy (प्रथम प्राथमिकता) होने के बाद हमारा ध्यान खोता नहीं |

अभी समझने के पहले ही आप सोचे की संसार के लिए (हम) उपयोगी हो गए हैं, वो होता नहीं | अनुभव के पहले, हमने सूचना दे दिया, प्रेरक हो पाए, इतना भर रहता है | वो primacy (प्राथमिकता) का ही चक्कर है और कुछ नहीं |primacy (प्राथमिकता) जो है ना अपने (स्वयं) से ही बनता है दुसरे से बनने वाला नहीं है | बनता है ? priority (प्राथमिकता) का fixation (निर्णय) अपने आप से बनेगा की दुसरे से बनेगा ?

प्राथमिकता को हमीं को देखना पड़ेगा | हम किसको प्राथमिक मानते हैं, यही पहला मुद्दा शोध का, दूसरा मुद्दा है हम कितना प्रयोजनशील हैं, तीसरा मुद्दा है हम कितना समझे है | अभी आपके जीने में क्या है, इसका उल्टा है | अभी क्या है, जितना हम समझे हैं उतना में करने में चले गए, तो उसी में दबे रहते पड़े हैं | हमारी ऐसी आदतें हो गयी है | अभ्यास हो गया है,ऐसा जीना हो गया है ... अब कैसा छुटेगा जल्दी| इसी में देरी होती है अनके priority प्राथमिकता होने के वजह से |

बच्चों में ये चीज़ नहीं है | अपन जैसा सिखाते हैं वैसा आदत बना लेते हैं, बच्चे | यही ना बात है ... हमारा परिवार जो हमको सिखाया, उसमे हमारा आदत हुआ, वैसा ही आपके परिवार ने जो सिखाया उसके अनुसार आपका आदत है, आपके बच्चे का भी आपके जैसा आदत बनता है |

क्या होना चाहिए, वो अभी तक मिला नहीं ना भई ! उसके लिए अपन क्या किया है - समाधान समृद्धि पूर्वक जीना चाहिए, उस लक्ष्य के लिए primary school (प्राथमिक विद्यालय) से शुरू करना चाहिए| आदतें उसी समय से डालना चाहिए | सही का आदत...

जिज्ञासा: मुझे ऐसा भी लगता है, की हम या तो भूतकाल के स्मरण से पीड़ित रहते हैं, अथवा भविष्य के लिए योजना बनाते रहते हैं .... वर्तमान का निरीक्षण करना, जीना, बनता नहीं |

उत्तर: वही बात है | अध्ययन जो है ना, वर्तमान में है | वर्तमान का ही अध्ययन है | वर्तमान ही समझ में आता है | भूतकाल का समीक्षा है | भविष्य का अनुमान है | वर्तमान में समझ है |

जिज्ञासा: इसका मतलब हर पल 'साधना' के अर्थ में है | संसार के साथ जितना व्यवहार है हमारा है, स्वयं को जांचने का अवसर है ...

उत्तर: हमारा परिस्थितियां हमारे लिए परीक्षण का अवसर बनता है | अभी आपके लिए यही है - जो भी परिस्थिति आये, उसमे निभने योग्य बने रहना | स्वयं का अध्ययन करने के विधी से होता है ...

:: हरी हर ::

संवाद संकलन जिम्मेदारी: श्रीराम नरसिम्हन | अप्रैल २०१७

सम्मेलन हेतु उद्धरण सहायता: वंदना सिंघल, मृदु महाजन: नवम्बर २०१९